अंक ७, २०२५

सुफलाम्

जलवायु परिवर्तन, अजैविक तनाव प्रबंधन एवं समृद्ध खेती

भाकृअनुप - राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान
बारामती, पुणे, महाराष्ट्र - ४१३ ११५

सुफलाम्

वार्षिक हिन्दी पत्रिका

(अंक ७, २०२५)

जलवायु परिवर्तन, अजैविक तनाव प्रबंधन एवं समृद्ध खेती

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान

बारामती, पुणे, महाराष्ट्र ४१३ ११५

भाकृअनुप
ICAR

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद गीत

जय जय कृषि परिषद भारत की,
सुखद प्रतीक हरित भारत की,
कृषिधन, पशुधन मानव जीवन,
दुग्ध, मत्स्य, फल, यंत्र सुवर्धन,
वैज्ञानिक विधि नव तकनीकी,
पारिस्थितिकी का संरक्षण,
सस्य-श्यामला छवि भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।
हिम प्रदेश से सागर तट तक,
मरु धरती से पूर्वोत्तर तक,
हर पाठ पर है, मित्र कृषक की,
शिक्षा, शोध, प्रसार सकल तक,
आशा स्वावलंबित भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।
जय जय कृषि परिषद भारत की।

नियासम गीत

यहाँ खोज खोज पर,
तनाव मुक्ति का नारा है ।
अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान हमारा है ।।
यहाँ सोच नयी, पर ध्यास वही,
किसान कल्याण की, आस वही ।
उन्नत खेती की, जब प्यास बढ़ी,
बुनियाद नियासम की, हुई खड़ी।
कृषि परिषद का विश्वास है,
विज्ञान जगत का कौशल भी ।
बारामती से ऋत बदलाव में सहारा है ।
अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान हमारा है ।।
उपज क्रांति के, रंग खिलेंगे,
अन्नसुरक्षा, है लक्ष्य यही ।
पशु-पक्षी मत्स्य उत्पादन,
बागवानी से आय दुगनी ।
हवा पानी मिट्टी से यहाँ,
समस्त तनाव मिटाना है ।
संकल्प सिद्धि का झंडा,
गौरव से लहराना है ।
अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान हमारा है ।।

-- प्रविण तावरे
भाकृअनुप-राअस्ट्रैप्रसं, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान
बारामती, पुणे, महाराष्ट्र- ४१३ ११५

सुफलाम्

वार्षिक हिन्दी पत्रिका

(अंक ७, २०२५)

जलवायु परिवर्तन, अजैविक तनाव प्रबंधन एवं समृद्ध खेती

संरक्षक एवं मार्गदर्शक : डॉ. के सम्मि रेड्डी, निदेशक,भाकृअनुप-राअस्ट्रैप्रसं, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र - ४१३ ११५

प्रधान सम्पादक : डॉ. सुधीर कुमार मिश्र, वरिष्ठ वैज्ञानिक
डॉ. महेश गुप्ता, वरिष्ठ वैज्ञानिक

सम्पादक सदस्य : डॉ. रफ़ात सुल्ताना, वरिष्ठ वैज्ञानिक
डॉ. पारितोष कुमार, वैज्ञानिक
डॉ. प्रभात कुमार, वैज्ञानिक

उद्धरण : सुफलाम्, अंक ७, २०२५
भाकृअनुप- राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान
बारामती, पुणे, महाराष्ट्र ४१३ ११५
ISBN: 978-81-985897-9-8

आईएसबीएन : 978-81-985897-9-8

छायाचित्र एवं रेखांकन : प्रविण मोरे

प्रकाशक एवं संपर्क सूत्र : निदेशक
भाकृअनुप - राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान बारामती, पुणे, महाराष्ट्र ४१३ ११५
फोन: (०२११२) २५४०५७, २५४०५८
फैक्स: (०२११२) २५४०५६
ई-मेल: director.niasm@icar.org.in
वेबसाइट: https://niam.res.in

डिस्क्लेमर : पत्रिका में प्रकाशित लेख संबधित लेखकों के व्यक्तिगत विचार हैं। प्रकाशन का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

© सर्वाधिकार सुरक्षित

डॉ. के सम्मि रेड्डी
निदेशक

निदेशक की कलम से

जलवायु परिवर्तन के कारण में सूखा, बाढ़, लवणता और उच्च एवं निम्न तापमान जैसे अजैविक तनावों की आवृत्ति एवं तीव्रता बढ़ रही है। कृषि व पशुपालन पर इसका व्यापक असर पड़ रहा है, ज्यादातर प्रभाव नकारात्मक प्रतीत हो रहे हैं। अजैविक तनावों के कारण कृषि उत्पादकता में कमी तथा पशु उत्पादों की गुणवत्ता में गंभीर ह्रास की संभावना है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद - राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान (भाकृअनुप-राअस्ट्रैप्रसं) फसल, पशुधन तथा मात्स्यिकी उत्पादन को प्रभावित करने वाले विभिन्न अजैविक तनावों के प्रभावी प्रबंधन हेतु बुनियादी एवं रणनीतिक अनुसंधान करता है। समय-समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा किसानों की आय बढ़ाने व आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

भाकृअनुप-राअस्ट्रैप्रसं, बारामती द्वारा "सुफलाम्" वार्षिक हिन्दी पत्रिका का सातवाँ संस्करण आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। इस पत्रिका में वैज्ञानिक लेखों का सरल भाषा में समावेश किया गया है। पत्रिका के इस अंक में विभिन्न अजैविक तनावों का कृषि पर प्रभाव एवं उनका समुचित प्रबंधन संबंधित लेख शामिल किए गए हैं। इसमें संग्रहित सभी कृतियाँ लेखकों के निजी विचार हैं। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य सहज और सरल भाषा में कृषि विषय पर तकनीकी जानकारी उपलब्ध कराना है, जिससे किसानों की आय में वृद्धि हो सके। संस्थान की ओर से मैं 'सुफलाम्' पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु संपादक मण्डल को हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ तथा इसके उत्कृष्ट एवं सारगर्भित संकलन के लिए उनकी सराहना करता हूँ।

के. सम्मि रेड्डी

दिनांक: ३१ दिसम्बर २०२५ (के. सम्मि रेड्डी)

सम्पादकीय....

भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती द्वारा प्रकाशित "सुफलाम्" वार्षिक हिन्दी पत्रिका का सातवाँ संस्करण आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत हर्ष हो रहा है। यह पत्रिका कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों में हो रहे नवीन वैज्ञानिक अनुसंधान, तकनीकी प्रगति तथा व्यावहारिक अनुभवों को किसानों, वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों एवं सामान्य जन-मानस तक पहुँचाने का एक सार्थक प्रयास है। किसी भी ज्ञान की वास्तविक उपयोगिता तभी सिद्ध होती है जब उसका रूपान्तरण मातृभाषा में किया जाए। राजभाषा हिन्दी एक सरल, सहज एवं प्रभावी माध्यम है, जिसके द्वारा विज्ञान जैसे जटिल विषयों को भी आम जन-समुदाय तक सहजता से पहुँचाया जा सकता है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए "सुफलाम्" पत्रिका का प्रकाशन हिन्दी भाषा में किया जा रहा है।

इस अंक में कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों से जुड़े समसामयिक और महत्वपूर्ण विषयों को सम्मिलित किया गया है। पत्रिका में फसल उत्पादन, बागवानी, पशुपालन, मत्स्य विज्ञान, डेयरी, मुर्गी पालन, प्राकृतिक एवं सतत कृषि, जलवायु परिवर्तन, तथा अजैविक तनाव प्रबंधन जैसे विषयों पर आधारित वैज्ञानिक लेख प्रस्तुत किए गए हैं। विशेष रूप से, पानी, उर्वरक स्तर एवं खरपतवार प्रबंधन, सूखा, जलभराव एवं तापमान वृद्धि के प्रति फसलों की प्रतिक्रिया, गन्ना, अरहर व अन्य महत्वपूर्ण फसलों पर वैश्विक ऊष्मीकरण के प्रभाव तथा अनुकूलन के माध्यम से खाद्य सुरक्षा एवं स्थिरता को बढ़ाने जैसे विषय इस अंक की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इसके अतिरिक्त, कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं मशीन लर्निंग, सूक्ष्मजीवीय तनाव प्रबंधन रणनीतियाँ, तथा कृषि पारिस्थितिकी के माध्यम से किसानों की आय, मृदा स्वास्थ्य एवं स्थायी उत्पादन जैसे महत्वपूर्ण विषयों को शामिल किया गया है। पशुपालन, मत्स्यिकी एवं कुक्कुट पालन क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, जलवायु-अनुकूलन, तथा भविष्य की नीति जैसी अवधारणाएँ इस अंक को समृद्ध करती हैं। वैज्ञानिक लेखों के साथ-साथ, स्वरचित काव्य रचनाओं का भी समावेश किया गया है, जो पत्रिका को साहित्यिक संवेदना प्रदान करते हुए सामान्य पाठकों को भी आकर्षित करता है।

संपादक मंडल संस्थान के निदेशक डॉ. के. सम्मि रेड्डी का हार्दिक आभार व्यक्त करता है, जिनके मार्गदर्शन, प्रोत्साहन एवं सहयोग से पत्रिका का समयबद्ध प्रकाशन संभव हो सका। साथ ही, सभी रचनाकारों के प्रति हम कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिन्होंने अपने मौलिक, वैज्ञानिक एवं उपयोगी लेखों के माध्यम से "सुफलाम्" को ज्ञानवर्धक एवं रोचक बनाया। हमें पूर्ण विश्वास है कि "सुफलाम्" पत्रिका का यह अंक किसानों, वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों तथा जन-मानस के लिए उपयोगी सिद्ध होगा और कृषि क्षेत्र में जागरूकता एवं नवाचार को प्रोत्साहित करेगा। इसी आशा के साथ "सुफलाम्" वार्षिक हिन्दी पत्रिका का सातवाँ संस्करण आपके समक्ष प्रस्तुत है। पत्रिका को और अधिक ज्ञानवर्धक, उपयोगी एवं प्रभावशाली बनाने हेतु आपके रचनात्मक सुझावों एवं योगदान की हमें सदैव प्रतीक्षा रहेगी।

- संपादक मंडल

♦♦♦♦♦

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
१.	जलवायु परिवर्तन का पशुपालन पर प्रभाव	संजीव कोचेवाड़, सचिन पवार, महेश गुप्ता, नीरज कुमार, नितिन कुराडे, अविनाश निर्मले, के. सम्मि रेड्डी	१-४
२.	कृषि में अजैविक तनाव प्रबंधन के नए दृष्टिकोण	एलीजा प्रधान, धनश्री आनंदा शिद, सोनम	५-७
३.	मक्के में पोषक तत्वों के अवशोषण पर उर्वरक स्तर और खरपतवार प्रबंधन का प्रभाव	धनश्री आनंदा शिद, एलिजा प्रधान, प्रकाश कडु	८-१०
४.	सुखमय जीवन के सरल उपाय	सुनील कुमार दास, त्रिलोक सैनी	११-१३
५.	गन्ने की फसल में वैश्विक ऊष्मीकरण का परिणाम और प्रबंधन	सुधीर कुमार मिश्र, राम नरायन सिंह, सोनम, संतोष राठोड, विक्रांत सिंह, कुलदीप सिंह, जी. सी. वाकचौरे, अजय कुमार सिंह, के. सम्मि रेड्डी	१४-२१
६.	कृषि में अजैविक तनाव प्रबंधन के लिए सूक्ष्मजीवीय रणनीतियाँ	रिंकू डे, अभय कुमार अवस्थी, के. के. पाल, के. सम्मि रेड्डी	२२-३०
७.	खाद्य सुरक्षा और स्थिरता को बढ़ाने के लिए सहनशील फसलें	श्रुतर्षी कुंडू, अभय कुमार अवस्थी, सुषमा अवाजी, रिंकू डे, के. सम्मि रेड्डी	३१-३५
८.	बकरीयों में जूँ: कारण, उपचार और रोकथाम	एन. पी. कुराडे, एस. एस. पवार, ए. वी. निर्मले, संजीव कोचेवाड़, महेश गुप्ता, पी. एल. चव्हाण, मुकेश भेंडारकर, बी. गोपालकृष्णन	३६-३९
९.	जलभराव की स्थिति में अरहर की प्रतिक्रिया	प्रशांतकुमार एस. हंजगी, सूरज गुंड, सुषमा अवाजी, संतोष राठोड, ए. के. सिंह	४०-४१
१०.	वैश्विक तापमान वृद्धि का फसल उत्पादन पर प्रभाव	सेको-यू थेले, अभय कुमार अवस्थी, सुषमा अवाजी, रिंकू डे, के. सम्मि रेड्डी	४२-४६
११.	प्राकृतिक खेती एवं सतत कृषि उत्पादन	राजगोपाल वडिवेल, निंटू मंडल, रिंकू डे, के. सम्मि रेड्डी	४७-४९
१२.	कृषि पारिस्थितिकी : किसानों की आय, मृदा स्वास्थ्य और स्थायी उत्पादन की दिशा में परिवर्तनकारी पहल	एम. शमीम, एन. रवीशंकर, एम. ए. अंसारी, ए. के. प्रुष्टि, राघवेन्द्र के. जे., आर. सिंह, नम्रता जैन, गोपाल कुमार, ए. सिक्का, सुनील कुमार	५०-५३

१३.	महाराष्ट्र के पशुपालन और मुर्गीपालन क्षेत्रों में विकास प्रवृत्तियाँ और अस्थिरता: विश्लेषण और नीति मार्ग	नव्याश्री पी, नोबीन चंद्र पॉल, ऋतुजा डी. लबडे, प्रज्ञा देशपांडे, रवी कुमार कुरे, धनंजय डी. नांगरे, संजीवकुमार कोचेवाड	५४-५७
१४.	भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में पाम की खेती का महत्व	नव्याश्री पी., नोबिन चंद्र पॉल, जी. एम. हिरेमथ, राजेश पवार, प्रथमेश सकाटे	५८-६०
१५.	अजैविक तनाव प्रबंधन में ह्यूमिक पदार्थों की भूमिका और भविष्य की संभावनाएँ	निंटू मंडल, राजगोपाल वडिवेल, महेश गुप्ता, सुधीर कुमार मिश्र, रिंकू डे, के. सम्मि रेड्डी	६१-६४
१६.	बकरियों में गर्मी का प्रभाव एवं प्रबंधन	ऋतुजा पवार, भावना अहिवले, सचिन पवार, महेश गुप्ता, नितिन कुराडे, अविनाश निर्मले	६५-६७
१७.	कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग के माध्यम से अजैविक तनाव प्रबंधन	सोनम, राम नरायन सिंह, सुधीर कुमार मिश्र, एलीजा प्रधान, सुनील कुमार दास	६८-७३
१८.	कविता : मन के भीतर	अमृत मोरडे	७४
१९.	अजैविक तनाव सहनशीलता के लिए ब्रासिनोस्टेरॉइड का अनुप्रयोग	दीपांकर बर्मन, प्रशांत कुमार एस. हंजागी, ललित के. मीना, जगदीसन बी., सुषमा अवाजी	७५-७८
२०.	अपराजिता (*क्लिटोरिया टर्नेटिया*): एक बहुपयोगी पौधा	जगदीसन बी., दीपांकर बर्मन, सुषमा अवाजी, प्रशांतकुमार एस. हंजागी	७९-८३
२१.	स्वस्थ मिट्टी, स्वस्थ भोजन: भारत में पोषण संकट के समाधान के लिए प्राकृतिक खेती का महत्व	गौरी रावले, संग्राम चव्हाण, विजयसिंह काकडे, अमृत मोराडे	८४-८८
२२.	लवणप्रिय पौधे और उनकी बहुआयामी लवण सहनशीलता	सुषमा अवाजी, प्रशांतकुमार एस. हंजागी, अजय कुमार सिंह	८९- ९०
२३.	आर (R) में बहु-स्तरीय मान-केंडल (एमके) परीक्षण का उपयोग करके वर्षा प्रवृत्ति विश्लेषण	संतोष राठोड, प्रशांतकुमार एस. हंजगी, सुधीर कुमार मिश्र, महेश गुप्ता, निंटू मंडल	९१-९८
२४.	जलवायु-अनुकूल कुक्कुट पालन: अवधारणाएँ, व्याव्हारिक उपाय एवं भविष्य की दिशा	महेश गुप्ता, एन.पी. कुराडे, संतोष राठोड, एस. एस. पवार, ए. वी. निर्मले, संजीव कोचेवाड़, सचिन कुमार	९९-१०३
२५.	अल्प-अवधि दलहनी फसलों के माध्यम से भारत की धान-परती भूमि का उपयोग	रफ़ात सुल्ताना, बसवराज पाटिल, बोरैया के. एम., निलेश जोशी	१०४-१०६
२६.	भारतीय उष्णकटिबंधीय मत्स्य संसाधन प्रबंधन में पर्यावरणीय डीएनए (eDNA) तकनीक	मुकेश भेंडारकर	१०७-११६

जलवायु परिवर्तन का पशुपालन पर प्रभाव

संजीव कोचेवाड़, सचिन पवार, महेश गुप्ता, नीरज कुमार, नितिन कुराडे, अविनाश निर्मले, के. सम्मि रेड्डी
भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

आज के समय में जलवायु परिवर्तन केवल पर्यावरण तक सीमित समस्या नहीं है, बल्कि यह सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों पर भी व्यापक प्रभाव डाल रहा है। विशेष रूप से कृषि और पशुपालन जैसे आजीविका आधारित क्षेत्रों पर इसका असर सीधा और गहरा पड़ता है। भारत जैसे देश में, जहां बड़ी जनसंख्या की आजीविका पशुपालन पर निर्भर करती है, वहां जलवायु परिवर्तन के प्रभाव अत्यंत गंभीर हो सकते हैं। बढ़ते तापमान, अनियमित और असामान्य वर्षा, सूखा, बाढ़ और चक्रवात जैसी घटनाएं न केवल पशुओं के स्वास्थ्य और उत्पादन को प्रभावित करती हैं, बल्कि पशुपालकों की जीवनशैली, आय और सामाजिक संरचना को भी हिला देती हैं। जलवायु परिवर्तन का पशुधन उत्पादन पर गहरा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि यह चारे की उपलब्धता, पशुओं के स्वास्थ्य, प्रजनन क्षमता और कुल उत्पादकता को प्रभावित करता है। पशुपालन, जो पारंपरिक रूप से एक स्थिर और टिकाऊ आय का स्रोत माना जाता था, अब जलवायु परिवर्तन के कारण अनिश्चितता की ओर बढ़ता जा रहा है।

तापमान वृद्धि का पशुधन पर प्रभाव

वैश्विक तापमान में लगातार वृद्धि जलवायु परिवर्तन के सबसे प्रत्यक्ष प्रभावों में से एक है । तापमान के बढ़ने से पशु हीट स्ट्रेस (गर्मी से तनाव) का शिकार हो जाते हैं। जब तापमान पशुओं की सहनशक्ति सीमा से ऊपर चला जाता है, तो पशु अपने शरीर में स्वाभाविक बदलाव (थर्मोरेगुलेशन) नहीं कर पाते, जिससे उनके स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। विशेष रूप से दूध देने वाले पशुओं जैसे - गाय और भैंस पर इसका गंभीर असर पड़ता है। वैज्ञानिक शोधों से यह साबित हो चुका है कि अधिक तापमान पर दुग्ध उत्पादन में १०% से ३०% तक की गिरावट आ सकती है। गर्मी के कारण पशु कम खाना खाते हैं, जिससे उनकी ऊर्जा आवश्यकता पूरी नहीं होती और वजन घटता है। इसके अलावा, गर्भवती पशुओं में गर्मी के कारण गर्भपात तक की घटनाएं भी देखी गई हैं। यही नहीं, हीट स्ट्रेस पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी कम करता है, जिससे वे संक्रामक बीमारियों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं।

चारा और पानी की कमी

जलवायु परिवर्तन का दूसरा बड़ा प्रभाव चारा और पानी की उपलब्धता पर पड़ता है। बारिश के क्रम में बदलाव, सूखा और बाढ़ जैसी चरम घटनाएं चारा उत्पादन को प्रभावित करती हैं। विशेषकर वर्षा पर आधारित घास या चारा वाली फसलें जैसे- नेपियर, बाजरा, मक्का आदि कम या असमय बारिश के कारण खराब हो जाती हैं, जिससे पशुओं को पर्याप्त पोषण नहीं मिल पाता। कम पोषण से उनकी वृद्धि दर, दूध उत्पादन और प्रजनन चक्र पर सीधा असर पड़ता है। इसके अतिरिक्त, जल स्रोतों के सूखने और भूजल स्तर के गिरने से पशुओं को पीने के लिए शुद्ध जल

उपलब्ध नहीं होता, जिससे उनका स्वास्थ्य और उत्पादकता दोनों प्रभावित होते हैं। गर्मी के मौसम में जब तापमान उच्च होता है और जल स्रोत सूख जाते हैं, यह समस्या और भी गंभीर हो जाती है । इस स्थिति में पशुपालकों को चारा और पानी खरीदने पर अतिरिक्त खर्च करना पड़ता है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति बिगड़ जाती है।

प्रजनन प्रणाली पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन पशुओं की प्रजनन क्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है। अत्यधिक गर्मी, पोषण की कमी और रोगों की अधिकता से पशुओं के हार्मोनल संतुलन पर असर पड़ता है, जिससे गर्भधारण दर में गिरावट आती है। विशेष रूप से नर पशुओं में शुक्राणु उत्पादन और गुणवत्ता पर गर्मी का नकारात्मक असर पड़ता है, और संतानोत्पत्ति क्षमता घट जाती है। मादा पशु में भी हीट स्ट्रेस और कुपोषण के कारण मद-चक्र (एस्ट्रस साइकत) प्रभावित हो जाने से, समय पर गर्भ धारण नहीं कर पातीं, गर्भधारण दर घटती है, एवं भ्रूण मृत्यु दर बढ़ती है। आने वाले समय में यह पशुधन संख्या में कमी का कारण बन सकता है, जिससे देश की पशुपालन-आधारित खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है।

जलवायु परिवर्तन का पशुधन की वृद्धि क्षमता पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन पशुधन की वृद्धि क्षमता पर कई प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। बढ़ते तापमान से उत्पन्न तनाव के कारण जानवर चारे का कम सेवन करते हैं, जिससे पोषक तत्वों की कमी और चारा-दक्षता घट जाती है। शरीर को ठंडा रखने में अधिक ऊर्जा खर्च होने से वृद्धि के लिए उपलब्ध ऊर्जा कम पड़ जाती है। इसके साथ ही अनियमित वर्षा, सूखा और जल की कमी भी चारा सेवन को प्रभावित करते हैं। जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप चारे की उपलब्धता और गुणवत्ता प्रभावित होती है; गर्मी और सूखे के कारण हरा चारा कम हो जाता है और उसकी पोषण क्षमता घट जाती है, जिससे पशुओं में कुपोषण और धीमी वृद्धि देखने को मिलती है। इसके अतिरिक्त, गर्म और आर्द्र वातावरण रोगों और परजीवियों के प्रसार को बढ़ा देता है, जबकि ऊष्मा तनाव प्रतिरक्षा प्रणाली को कमजोर कर देता है। जलवायु परिवर्तन पशुओं की प्रजनन क्षमता पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है, जिससे जन्म के समय कम वजन और बछड़ों/मेमेंट्ट की धीमी वृद्धि देखी जाती है। चरम मौसम की घटनाएँ जैसे बाढ़, तूफान और लू भी चारा उपलब्धता नष्ट करते हैं और पशुओं में तनाव व चोट की संभावना बढ़ाते हैं। कुल मिलाकर, जलवायु परिवर्तन के कारण पशुधन की औसत दैनिक वृद्धि, फीड कन्वर्ज़न रेश्यो और कुल उत्पादकता में कमी आती है, जिससे पशुपालन पर प्रतिकूल आर्थिक प्रभाव पड़ता है।

रोगों और परजीवियों में वृद्धि

बदलती जलवायु परिस्थितियाँ पशुओं में रोगों और परजीवियों के फैलाव को बढ़ावा देती हैं। अधिक गर्म और नम वातावरण में जीवाणु, वायरस और अन्य परजीवी तेजी से पनपते हैं। इससे पशुओं में नई-नई बीमारियाँ उन क्षेत्रों में भी हो रही हैं, जहाँ पहले नहीं होती थीं। उदाहरण के लिए, टिक-बोर्न रोग जैसे- थेलरियोसिस और बाबेसियोसिस पहले केवल कुछ गर्म क्षेत्रों में देखे जाते थे, लेकिन अब ये कई अन्य क्षेत्रों में भी फैलने लगे हैं। साथ ही, बीमारियाँ फैलाने वाले मच्छर और मक्खियों जैसे कई वाहक भी बदलते मौसम के अनुसार अधिक सक्रिय हो जाते

हैं। पशुपालकों को इन बीमारियों से निपटने के लिए अधिक दवाइयों और पशु चिकित्सा सेवाओं पर खर्च करना पड़ता है, जिससे उनकी आमदनी में कमी आती है। यदि समय पर इलाज नहीं हो पाता, तो पशु मृत्यु दर भी बढ़ जाती है।

जलवायु परिवर्तन का किसानों के आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर प्रभाव

पशुपालन केवल आर्थिक गतिविधि नहीं है, यह ग्रामीण समाज की रीढ़ है। जलवायु परिवर्तन के कारण जब पशु बीमार पड़ते हैं, मरते हैं या उत्पादन नहीं देते, तो इसका सीधा असर पशुपालकों की आय पर पड़ता है। विशेषकर छोटे और सीमांत किसान, जो कुछ ही पशुओं पर निर्भर होते हैं, उन्हें भारी नुकसान उठाना पड़ता है। चारे और पानी की बढ़ती लागत, पशुचिकित्सा खर्च, और उत्पादन में गिरावट आदि कारक मिलकर पशुपालकों को आर्थिक रूप से अस्थिर कर देते हैं। कई बार तो उन्हें मजबूरी में अपने पशु बेचने पड़ते हैं या पशुपालन का धंधा पूरी तरह छोड़ना पड़ता है। इससे न केवल उनका सामाजिक दर्जा गिरता है, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य और जीवन स्तर जैसे अन्य क्षेत्रों पर भी असर पड़ता है। परिणामस्वरूप, ग्रामीण पलायन जैसी समस्याएँ बढ़ रहीं हैं, और लोगों को जीविकोपार्जन हेतु शहरों की ओर पलायन करने के कारण शहरी क्षेत्रों पर जनसंख्या दबाव बढ़ रहा है।

समाधान और भविष्य की दिशा

जलवायु परिवर्तन के संकट से निपटने के लिए बहुस्तरीय उपायों जैसे जलवायु सहनशील पशु नस्लों के विकास पर ज़ोर देना आवश्यकत है। क्योंकि देशी नस्लों में जलवायु को सहने की बेहतर क्षमता होती है, अतः इनके संरक्षण और संवर्धन की भी आवश्यकता है। साथ ही, सूखा-प्रतिरोधी चारे की किस्मों को बढ़ावा देना और आधुनिक चारा प्रबंधन तकनीकों को अपनाना भी जरूरी है। जल संरक्षण के लिए वर्षा जल संचयन, टपक (ड्रिप) सिंचाई और तालाबों के संरक्षण जैसे कदम उठाए जाने चाहिए। पशु चिकित्सा सेवाओं को सुलभ और सस्ता बनाकर समय पर रोगों की रोकथाम करना चाहिए। इसके अलावा, पशुपालकों के लिए बीमा योजनाएं और तकनीकी प्रशिक्षण की सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए। जब तक पशुपालकों को बदलते मौसम की जानकारी, पशु प्रबंधन के वैज्ञानिक तरीके और उपलब्ध सरकारी योजनाओं की पूरी जानकारी नहीं होगी, तब तक वे जलवायु परिवर्तन से पशुओं का बचाव नहीं कर पाएंगे।

बदलते मौसम के अनुसार पशुधन प्रबंधन

बदलते मौसम में पशुधन का उचित प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि तापमान, नमी और मौसम की अनिश्चितता सीधे पशुओं के स्वास्थ्य, उत्पादन और प्रजनन क्षमता को प्रभावित करती है। गर्मी के मौसम में पशुओं को छायादार और हवादार स्थान में रखना, ठंडा व स्वच्छ पानी उपलब्ध कराना, हरे चारे की मात्रा बढ़ाना तथा इलेक्ट्रोलाइट या गुड़-नमक का घोल देना लाभकारी है। इसके विपरीत सर्दी के मौसम में ठंड, तेज हवा और नमी से पशुओं में न्यूमोनिया और श्वसन संबंधी रोगों का खतरा बढ़ जाता है, इसलिए पशुशाला को गर्म, सूखा और हवा के सीधे बहाव से सुरक्षित रखना, पशुओं को सूखी बिछावन देना, गुनगुना पानी पिलाना तथा ऊर्जायुक्त भोजन देना आवश्यक होता है। वहीं बरसात के मौसम में अधिक नमी और कीचड़ के कारण खुरपका-मुंहपका, गलघोटू, परजीवी संक्रमण और दस्त जैसी बीमारियाँ तेजी से फैलती हैं, इसलिए पशुशाला की बेहतर जल निकासी, सूखा फर्श व बिछावन, पानी से

दूर चारे का भंडारण, टीकाकरण और पशुओं को कीचड़ से बचाना जरूरी है। हर मौसम में स्वच्छता, संतुलित आहार, स्वच्छ पानी, समय पर टीकाकरण, रोगों की नियमित जांच तथा नवजात बछड़ों को पहला दूध (कोलोस्ट्रम) पिलाने जैसी बुनियादी सावधानियाँ अपनाने से स्वस्थ पशुधन और बेहतर उत्पादन संभव है।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन का पशुपालन पर बहुआयामी और गंभीर प्रभाव होता है। क्योंकि, यह केवल पशुओं के उत्पादन तक सीमित न होकर सीधे-सीधे आर्थिक स्थिरता, खाद्य सुरक्षा, और ग्रामीण समाज के विकास से संबंधित है। यह स्पष्ट है कि यदि जलवायु परिवर्तन को गंभीरता से नहीं लिया गया और उसके प्रभावों को कम करने के लिए ठोस रणनीतियाँ नहीं अपनाई गईं, तो आने वाले समय में पशुपालन एक संकटग्रस्त क्षेत्र बन सकता है। अतः आवश्यक है कि सरकार-वैज्ञानिक-पशुपालक तीनों मिलकर एक साझा दृष्टिकोण अपनाएं और जलवायु-अनुकूल टिकाऊ पशुपालन प्रणाली विकसित करें।

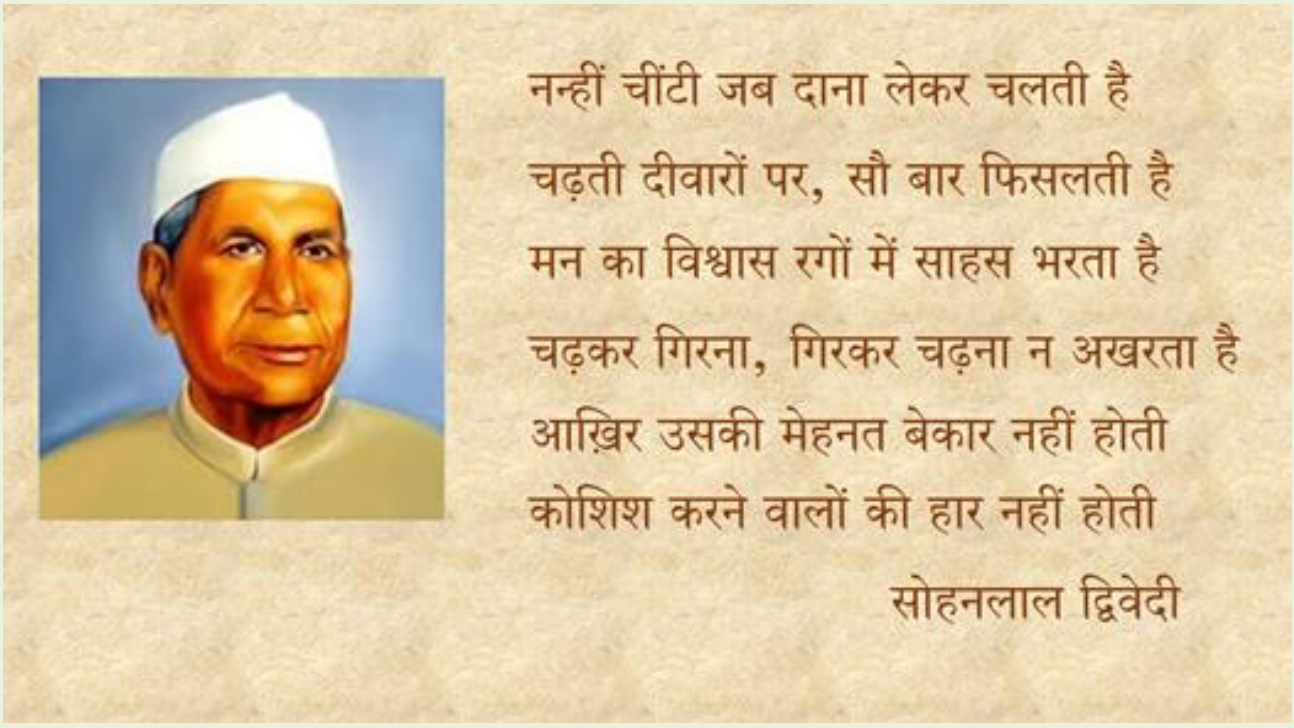

कृषि में अजैविक तनाव प्रबंधन के नए दृष्टिकोण

एलीजा प्रधान, धनश्री आनंदा शिद, सोनम

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

कृषि एक जीवन शैली के रूप में तब अस्तित्व में आई जब मानव ने भोजन की प्राप्ति के लिए "शिकार" पर निर्भर रहने के बजाय फसलों को अपनाया। तब से कृषि का विकास फसल उत्पादन को अधिकतम करने की एक कला के रूप में हुआ। वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ इस कला में नए आयाम जुड़े और विशेषज्ञों ने फसलों की आनुवंशिक उत्पादक क्षमता को अधिकतम करने का प्रयास किया। हरित क्रांति के प्रारंभिक चरण में खाद्य सुरक्षा की चुनौती अपेक्षाकृत सरल कम थी, क्योंकि प्राकृतिक संसाधन उस दौर की जनसंख्या की मांग को पूरा करने में सक्षम थे।

वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, सीमित प्राकृतिक संसाधन तथा जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों के कारण खाद्य सुरक्षा चुनौती अधिक जटिल हो गई है। फसल सुधार रणनीतियों में "आनुवंशिकी × पर्यावरण × प्रबंधन" की अवधारणा को अपनाकर फसलों में जलवायु सहनशीलता विकसित करना जरूरी है। विशेषकर प्रतिकूल कृषि-पर्यावरणीय क्षेत्रों में जहाँ हरित क्रांति का लाभ कम मिला, अजैविक तनावों का सटीक प्रबंधित करना अब अनिवार्य है।

अजैविक तनाव जैसे - वायुमंडलीय, मृदा एवं जल संबंधी प्रतिकूलता फसल वृद्धि एवं विकास हेतु आवश्यक अनुकूल सीमा से बहुत कम या ज्यादा होने पर तनाव उत्पन्न करते हैं। इन तनावों में जल-अभाव या जल-अधिशेष (सूखा/बाढ़), अत्यधिक या अत्यल्प तापमान, उच्च या निम्न विकिरण, मृदा में लवणता की अधिकता, पोषक तत्वों का असंतुलन इत्यादि प्रमुख हैं। इनसे उत्पन्न क्षति तनाव की तीव्रता एवं अवधि पर निर्भर करते हुए ५० से १००% तक उपज हानि का कारण बन सकती है । पिछले कुछ वर्षों में मौसम की अनिश्चितता बढ़ी है । वैज्ञानिक अनुमानों के अनुसार तापमान में प्रत्येक १°C वृद्धि पर चरम वर्षा घटनाओं में लगभग ७% वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में बुवाई समय में आवश्यक परिवर्तन द्वारा सुरक्षित खरीफ उत्पादन और उत्तम रबी की फसल प्राप्त कर सकते हैं। इसके साथ उचित कृषि-परिस्थितिकीय अनुकूलन, अजैविक तनाव-सहनशील जर्मप्लाज्म का उपयोग तथा फसल-विशिष्ट प्रबंधन प्रौद्योगिकियों के माध्यम से फसल उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है, जिससे बढ़ती जनसंख्या की खाद्य मांग को सतत रूप से पूरा किया जा सकता है I

जल तनाव प्रबंधन

वर्षा जनित घटनाओं (जैसे सूखा व बाढ़) से निपटने के लिए जल प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण है। वर्षा आधारित खेती में सूखे के दौर में नमी संरक्षण तकनीकों की भूमिका बढ़ जाती है। टपक (ड्रिप) सिंचाई के साथ उत्कृष्ट सिंचाई सॉफ़्टवेयर के उपयोग से आवश्यकतानुसार पानी देने के समय, धन, ऊर्जा एवं पानी की मात्रा में सुधार किया

जा सकता है। सूखे की स्थिति में खरपतवार प्रबंधन भी अहम है, क्योंकि खरपतवार नमी और पोषक तत्व छीनकर फसल को कमजोर कर देते हैं। उत्कृष्ट मशीनरी तथा शाकनाशी-प्रतिरोधी किस्में इस दिशा में सहायक हो सकती हैं। प्लास्टिक मल्चिंग के स्थान पर तेजी से भूमि ढकने वाली फसल किस्मों पर विचार किया जा सकता है। विकास चरण में अत्यधिक वर्षा होने पर जलभराव और फ़सल गिरने की समस्या से निपटने के लिए सोयाबीन में ब्रॉड बेड–फरो एवं गेहूँ में उठी क्यारियों का प्रयोग लाभकारी सिद्ध हुआ है। धान में सबमर्जेन्स सहनशील एवं अरहर में जलभराव सहनशील किस्मों का विकास इसी दिशा में एक सकारात्मक प्रयास है।

अत्यधिक तापमान प्रबंधन

जलवायु परिवर्तन पर अंतर-सरकारी पैनल (आईपीसीसी) रिपोर्ट के अनुसार इस सदी में वैश्विक तापमान में लगभग १.५ °C वृद्धि संभावित है। इससे दिन-रात दोनों समय तापमान बढ़ेगा, जिससे फसलों की वृद्धि अवधि घट सकती है तथा दाने का विकास बाधित हो सकता है। इससे बचाव हेतु अधोलिखित उपाय कारगर साबित हो सकते हैं।

- समय पर अथवा शीघ्र बोआई से टर्मिनल हीट स्ट्रेस से बचाव संभव है।
- पर्याप्त नमी से पौधे वाष्पोत्सर्जन के माध्यम से स्वयं को ठंडा रख सकते हैं।
- ड्रोन तथा थर्मल सेंसर आधारित फसल निगरानी से तनाव-संवेदनशील अवस्था में प्रबंधन निर्णय संभव है।
- अंतरफसली प्रणाली से भी ताप तनाव को कम किया जा सकता है।

चित्र १. सोयाबीन + अरहर की अंतरफसली खेती

मिट्टी में लवणता प्रबंधन

हरित क्रांति के दौरान अनियंत्रित सिंचाई के कारण कई क्षेत्रों में लवणता की दर तेजी से बढ़ी है। ड्रिप सिंचाई के बढ़ते उपयोग से भी सतही लवणता की समस्या उत्पन्न हो सकती है। ऐसे में, सिंचाई जल की लवणता कम करना, जल निकास सुधारना, चारा घास जैसे नमक सोखने वाली फसलों को चक्र में शामिल करना आदि प्रभावी समाधान हो सकते हैं। अजैविक तनाव अक्सर पोषक तत्वों की कमी/विषाक्तता तथा अत्यधिक विकिरण जैसी समस्याओं को जन्म देते हैं।

अजैविक तनावों के समाधान

पौधों के भीतर तनाव से उत्पन्न सुपरऑक्साइड जैसे अणु मुख्य हानिकारक होते हैं। वर्तमान में कई बायो-स्टिमुलेंट्स उपलब्ध हैं जो पौधों की एंटीऑक्सीडेंट क्षमता को बढ़ाकर तनाव सहनशीलता प्रदान करते हैं। सेंसर आधारित फसल-तनाव निगरानी उपकरण ऐसे बायोफॉर्मुलेशनों के समय व मात्रा निर्धारण में सहायक साबित होंगे।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव अब स्पष्ट दिखने लगे हैं। सूखा, बाढ़, अत्यधिक तापमान, तटीय क्षेत्रों में लवणता आदि पोषण-संबंधी समस्याओं को बढ़ाते हैं। इसलिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु अजैविक तनाव प्रबंधन एक सतत चुनौती रहेगा।जलवायु सहनशील किस्मों, कृषि उपकरणों एवं बायोफॉर्मुलेशनों का एकीकृत उपयोग भविष्य की खाद्य सुरक्षा में निर्णायक भूमिका निभाएगा। मौसम एवं फसल मॉडल के समुचित उपयोग से अत्यंत छोटे स्तर पर भी उपयुक्त प्रबंधन सुनिश्चित किया जा सकता है।

मक्के में पोषक तत्वों के अवशोषण पर उर्वरक स्तर और खरपतवार प्रबंधन का प्रभाव

धनश्री आनंदा शिद[१,२], एलिजा प्रधान[१], प्रकाश कडु[२]

[१]भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

[२]डॉ पंजाबराव देशमुख कृषि विद्यापीठ अकोला, महाराष्ट्र- ४४४ १०४

परिचय

गेहूँ और चावल के बाद मक्का दुनिया की तीसरी सबसे महत्वपूर्ण अनाज की फसल है। यह उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय और समशीतोष्ण क्षेत्रों सहित विभिन्न प्रकार की जलवायु के अनुकूल १६६ देशों में व्यापक रूप से उगाया जाता है। मक्के की उत्पत्ति लगभग ७००० वर्ष पूर्व अमेरिका में हुई थी। संयुक्त राज्य अमेरिका इसका सबसे बड़ा उत्पादक है, जो दुनिया के कुल मक्का उत्पादन में ३५ % का योगदान देता है। भारत में सर्वाधिक मक्का उत्पादक राज्य कर्नाटक (१५%), राजस्थान (१३%) और मध्य प्रदेश (१०%) हैं। महाराष्ट्र का नासिक जिला मक्का उत्पादन के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है, जो राज्य के कुल उत्पादन का २१.९५ % मक्का उत्पादित करता है। समय के साथ, भारत में मक्के की उत्पादकता काफी बढ़ी है। हालाँकि, औसत उत्पादकता ५४७ किग्रा/हेक्टेयर से बढ़कर २९६५ किग्रा/हेक्टेयर हो गई, जो ५.४२ गुना की वृद्धि है, परन्तु भारत में अपर्याप्त खरपतवार और पोषक तत्व प्रबंधन जैसी चुनौतियों के कारण यह अभी भी वैश्विक औसत से पीछे है। खरपतवार आवश्यक पोषक तत्वों, नमी, सूरज की रोशनी और जगह आदि के लिए मक्के के पौधों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं, जो फसल की उपज को प्रभावित करता है। इसलिए, खरपतवारों को एक प्रमुख कृषि कीट माना जाता है, जिससे ४५% तक कृषि हानि हो सकती है।

मक्के में उर्वरक और खरपतवार प्रबंधन

मक्का वास्तव में एक ऐसी फसल है जिसे इष्टतम विकास और उपज के लिए महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन के अलावा, पोटाश सबसे महत्वपूर्ण पौधा पोषक तत्व है, जिसे दुनिया भर की मिट्टी में पर्याप्त माना जाता था, परन्तु अब कई क्षेत्रों में इसकी कमी देखी गई है। हाल के वर्षों में फसल की आवश्यकता के आधार पर पोटेशियम को शामिल करना आवश्यक है। खरपतवार फसल उत्पादन में एक महत्वपूर्ण चुनौती पेश करते हैं। खरपतवारों के कारण मक्का उपज में ४०% से ६० % तक या इससे भी अधिक कमी हो सकती है (थोबात्सी, २००९)। इसलिए प्रभावी खरपतवार प्रबंधन महत्वपूर्ण है। टिकाऊ कृषि उत्पादन के लिए, उच्च उर्वरकों की माँग के साथ बेहतर सिंचाई-सह-पोषक तत्व अनुप्रयोग (फर्टीगेशन) विधि के माध्यम से पानी और पोषक तत्व सह-उपयोग दक्षता को बढ़ाया जा सकता है (शिद इत्यादि, २०२२)।

ऐसा कोई भी शाकनाशी उपलब्ध नहीं है जो अकेले मक्का की फसल में वांछित खरपतवार नियंत्रण कर सके। इसके विपरीत, एकल शाकनाशी का निरंतर उपयोग विभिन्न खरपतवार प्रजातियों में शाकनाशी प्रतिरोध क्षमता के विकास और खरपतवार वनस्पतियों में अहम बदलाव के लिए जिम्मेदार हो सकता है । मक्के के पौधों के बीच

खाली जगह में खरपतवार पनप सकते हैं जो पोषक तत्वों के लिए मुख्य फसल से प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। इसलिए, क्षेत्र-विशिष्ट पोषक तत्व और खरपतवार प्रबंधन रणनीति विकसित करना आवश्यक है। विभिन्न नियंत्रण विधियों को एकीकृत करके, किसान खरपतवारों के प्रभाव को कम कर सकते हैं और खरीफ व रबी दोनों मौसमों में मक्का की समग्र उत्पादकता में सुधार कर सकते हैं (दास इत्यादि, २०१२)।

मक्के में पोषक तत्व ग्रहण पर उर्वरक स्तर और खरपतवार प्रबंधन का प्रभाव

मक्के की फसल के सभी विकास अवस्थाओं में स्पष्ट रूप से देखा गया है कि मिट्टी में परंपरागत विधि से उर्वरक देने की तुलना में ड्रिप फर्टिगेशन के माध्यम से पोषक तत्वों की आपूर्ति करने पर पौधों की पोषक तत्व अवशोषण क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। फर्टिगेशन न केवल पौधों द्वारा पोषक तत्वों के कुशल उपयोग को बढ़ाता है, बल्कि मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की उपयोगिता एवं संतुलन पर भी सकारात्मक प्रभाव डालता है।

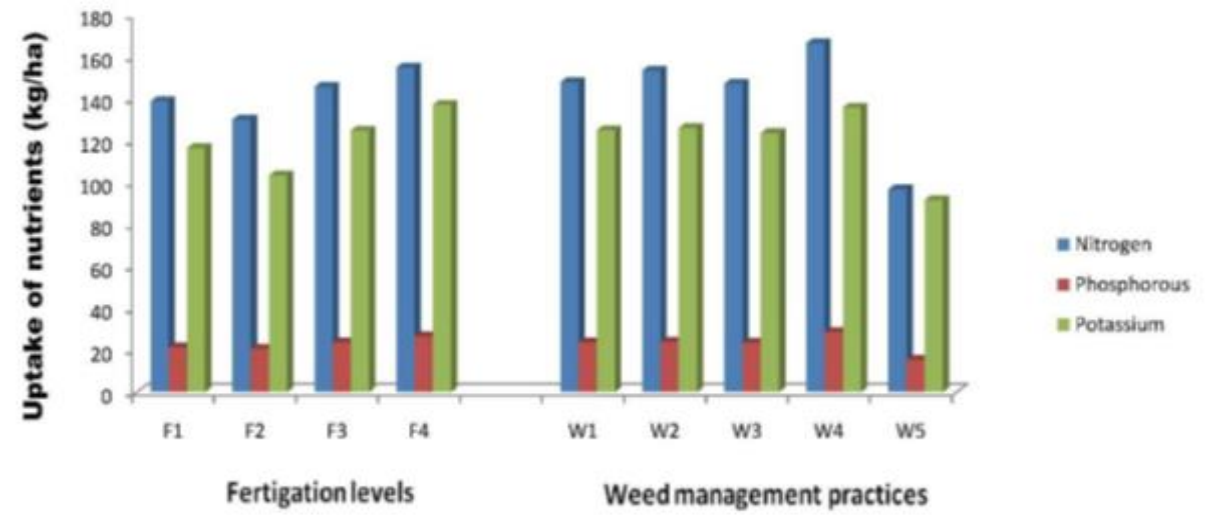

चित्र १ . विभिन्न उर्वरक स्तरों और खरपतवार प्रबंधन का पोषक तत्व अवशोषण पर प्रभाव

अध्ययन (चित्र १) से यह ज्ञात हुआ कि १२५ प्रतिशत उर्वरक स्तर अपनाने की अपेक्षा १०० प्रतिशत ड्रिप फर्टिगेशन अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ, जिसमें लगभग २५ प्रतिशत उर्वरक की बचत संभव हुई। इसके साथ ही फसल की उपज में वृद्धि, जल उपयोग दक्षता तथा उर्वरक उपयोग दक्षता में भी महत्वपूर्ण सुधार दर्ज किया गया। अतः ड्रिप फर्टिगेशन तकनीक मक्का उत्पादन में संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग, लागत में कमी एवं सतत कृषि प्रणाली को बढ़ावा देने की दृष्टि से एक प्रभावी एवं व्यवहारिक विकल्प सिद्ध होती है ।

निष्कर्ष

ड्रिप निषेचन के साथ उपयुक्त पोषक तत्व संयोजन अपनाने से पौधों तक पोषक तत्वों की कुशल एवं समय पर आपूर्ति सुनिश्चित होती है, जिससे पौधों की वृद्धि एवं विकास में सुधार होता है। सामान्यतः खरपतवार नियंत्रण हेतु हाथ से निराई-गुड़ाई की जाती है। यह विधि श्रम-साध्य अवश्य है, किंतु रासायनिक नियंत्रण की तुलना में अधिक पर्यावरण-अनुकूल मानी जाती है। खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण के लिए बुआई के समय प्रति एकड़ 300 ग्राम की

दर से ५० % WP (५० % गीला करने योग्य पाउडर) एट्राज़िन के प्रयोग की अनुशंसा की जाती है। एट्राज़िन एक चयनात्मक शाकनाशी है, जो विभिन्न प्रकार के वार्षिक, चौड़ी पत्ती एवं घास कुल के खरपतवारों के विरुद्ध प्रभावी है।

संदर्भ

थोबात्सी, टी. (२००९). अंतरवर्ती खेती (इंटरक्रॉपिंग) प्रणाली में मक्का (*Zea mays* L.) और लोबिया/काउपी (*Vigna unguiculata*) की वृद्धि एवं उपज प्रतिक्रिया. एम.एससी. शोध प्रबंध, प्रिटोरिया विश्वविद्यालय, १४९ पृष्ठ।

शिद, धनश्री, कडू, पी.आर., कोंडे, एन.एम., देशमुख, जे.पी., एवं जाधवर, पी.आर. (२०२२). इन्सेप्टिसोल्स (इनसेप्टिसोल मृदा) में उर्वरक स्तर और खरपतवार प्रबंधन का मक्का की उपज तथा पोषक तत्वों के अवशोषण पर प्रभाव. जर्नल ऑफ़ फार्माकोग्नॉसी एंड फ़ाइटोकेमिस्ट्री, ११(१), १७९–१८४ ।

दास, टी.के., एवं यादवुराजु, एन.टी. (२०१२). सिंचाई और उर्वरक स्तरों के संदर्भ में मक्का की वृद्धि, पोषक तत्व अवशोषण तथा उपज पर खरपतवार प्रतिस्पर्धा का प्रभाव. द जर्नल ऑफ़ एग्रीकल्चरल साइंस, १३३, ३८५–३९० ।

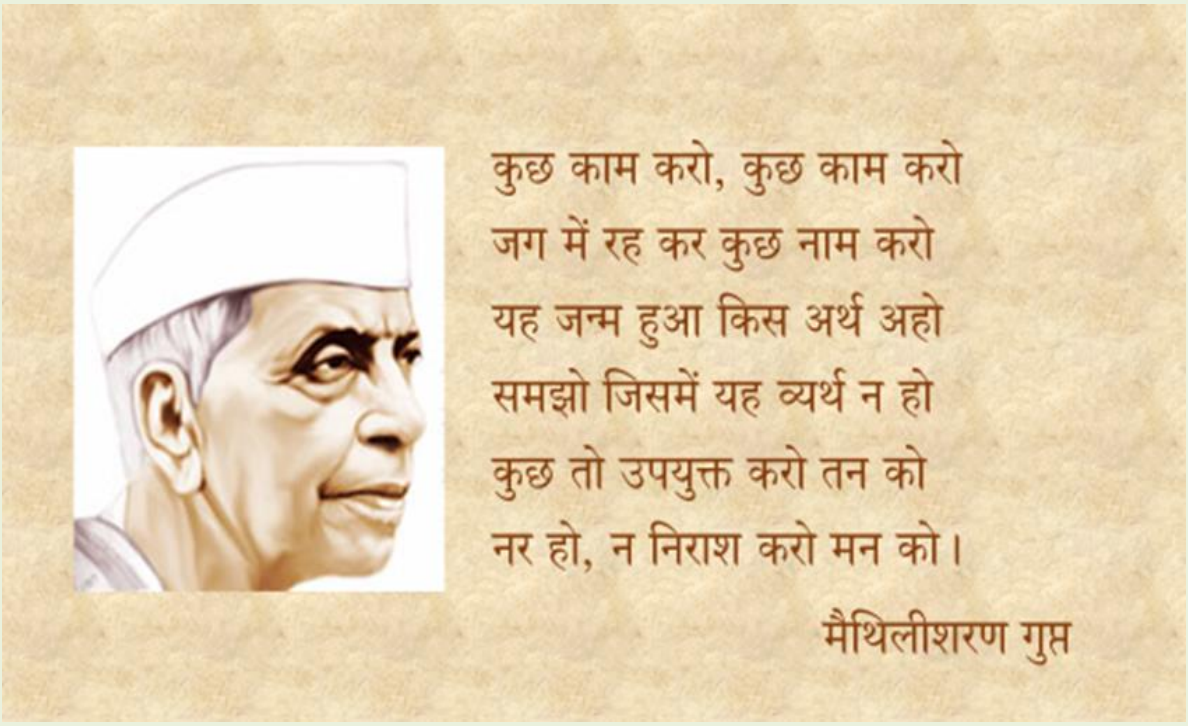

सुखमय जीवन के सरल उपाय

सुनील कुमार दास, त्रिलोक सैनी

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

आज कल की भाग दौड़ भरी जिन्दगी में इंसान हमेशा परेशान रहता है और इन परेशानियों से बचने के लिए सबसे पहले हमें खुद को खुश रखना पड़ेगा। खुद को खुश रखने के लिए हमें, भगवद् गीता में कही गई कुछ बातों को याद रखना पड़ेगा। भगवद् गीता एक पवित्र और दार्शनिक ग्रंथ है, जो महाभारत का महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह कुरूक्षेत्र युद्ध के समय अर्जुन और भगवान श्रीकृष्ण के बीच हुए संवाद का संग्रह है। गीता में जीवन, कर्तव्य, धर्म, आत्मज्ञान, भक्ति, कर्म, योग और मोक्ष जैसे विषयों पर गहन शिक्षाएं दी गई हैं। भगवद् गीता को केवल धार्मिक ग्रंथ ही नही, अपितु एक सार्वभौमिक जीवन-दर्शन भी माना जाता है।

भगवद् गीता पर आधारित सुखमय जीवन के कुछ सरल उपाय निम्न हैं:-

1. तकलीफ के समय और सबका साथ छूट जाने के बाद जब इंसान टूट जाता है तो एक नए चरित्र का निर्माण होता है और तभी उसके अंदर की असली शक्ति का जन्म होता है क्योंकि किसी पर भी आश्रित होने तक हमारी योग्यता का पता नहीं चलता है। अतः किसी पर आश्रित होने से अच्छा है, किसी जरूरतमंद का सहारा बनो।

2. इंसान को अपनी हर चिंता और डर ईश्वर को समर्पित कर देना चाहिए और ऐसा करने से इंसान को जीवन का वास्तविक आनंद लेने का बल मिलता है।

3. इंसान का दिमाग, परेशानी या सुख का कारण नहीं बन सकता, उसकी सोच और उसके विश्वास की वजह से ही इंसान सुखी या दुखी, अमीर या गरीब तथा छोटा या बड़ा हो सकता है। अतः अपने आप पर विश्वास रखते हुए सकारात्मक सोच का निर्माण करो।

4. ईश्वर, इंसान को बहुत ही अच्छे से जानता है, वह कौन है, क्या है, क्या सोचता है, क्या चाहता है आदि आदि, परन्तु ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को इंसान ठीक से नहीं समझ पाया है। ईश्वर का कोई आदि नहीं, कोई अंत नहीं, कोई रूप नहीं, कोई नाम नहीं, परन्तु ईश्वर को विश्वास और श्रद्धा के साथ जिस भाव से भी इंसान पुकारता है, ईश्वर उसी रूप में प्रकट हो जाता है।

5. इंसान को सुखी जीवन जीने के लिए अपने मन को काबू में रखना चाहिए, क्योंकि यदि मन आपके वश में होता है तो वह आपको रोशनी की तरफ ले जाता है और यदि आप मन के गुलाम बन जाते हैं तो वही मन आपको अंधकार की दुनिया में ले जाता है। इंसान के मन के कमजोर होने पर परिस्थितियां, समस्या बन जाती हैं और मन के मजबूत होने पर वही परिस्थितियां अवसर/मौका बन जाती हैं।

6. इंसान, जीवन की तीन अवस्थाओं से गुजरता है, बचपन, जवानी, बुढ़ापा और इसके बाद मृत्यु। मृत्यु के बाद शरीर छूट जाता है, परन्तु अन्तर्मन कभी नहीं मरता, जब तक कि उसकी सभी इच्छाएं और वासनाएं पूरी या खत्म नहीं हो जाती। जीवन में इच्छाएं और वासनाएं जितनी अधिक होंगी, जीवन में तकलीफें उतनी अधिक होंगी, अतः इंसान को अपनी इच्छाओं को कम करते हुए निःस्वार्थ भाव से बिना किसी लालच या चिंता के कर्म करते रहना चाहिए, सुख अपने आप ही आएगा।

7. ईश्वर सभी के दिलों में वास करते हैं, परन्तु इंसान अपने दिल या चेतना की सुनना छोड़ देते हैं। जब इंसान पहली बार कोई बुरा कर्म करता है तो ईश्वर की आवाज उसे रोकती है, परन्तु बार-बार गलत कर्म करते हुए उसको यह आवाज सुनाई नहीं देती है।

8. ऐसा कोई इंसान नहीं है, जिसमें कोई बुराई नहीं है और ऐसा भी कोई इंसान नहीं है, जिसमें कोई अच्छाई नहीं है। यह तो आपके ऊपर निर्भर करता है कि आप अच्छे से अच्छे इंसान में बुराई ढूंढ़ रहे या बुरे से बुरे इंसान के अंदर छिपी हुई अच्छाई ढूंढ़ रहे हैं।

9. जहां आपके लिए प्रेम नहीं, आपकी इज्जत या कद्र नहीं, आपकी कोई कीमत नहीं, वहां कभी नहीं जाना चाहिए। गलत को कभी भी बर्दाश्त नहीं करना चाहिए, उसका हमेशा विरोध करना चाहिए।

10. इंसान को कभी भी भूतकाल या भविष्यकाल के विषय में नहीं सोचना चहिए, केवल अपने वर्तमान को जीना चाहिए, ऐसा करने से आपके अधिकतम कष्टों का अन्त हो जाएगा।

11. वासना, क्रोध और लालच, इनसे इंसान का सर्वनाश निश्चित है तथा उनके लिए नर्क के द्वार खुल जाते हैं, अतः इंसान को हमेशा इन प्रवृत्तियों से दूर रहना चाहिए।

12. घमण्ड, गुस्सा, निर्दयता ये सभी आसुरी प्रकृति के गुण हैं, इसलिए ऐसे लोगों से हमेशा दूर ही रहना चाहिए, क्योंकि संगत ही इंसान की दिशा निर्धारित करती है।

13. इंसान, यदि संसार में आया है तो जाना भी तय है। साथ ही संसार में दुख भी मिलना तय है, इसलिए दुख से कभी डरना या घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि यह संसार अशाश्वत है, शाश्वत नहीं, इसलिए दुख कभी भी सुख में बदल सकता है।

14. इस संसार में हमारा अपना कुछ भी नहीं है, इसलिए ना तो किसी के लिए रोना चाहिए और ना ही किसी के लिए चिन्ता करनी चाहिए ।

15. इंसान को अपने कर्म पर ही ध्यान केन्द्रित रखना चाहिए, परिणाम पर नहीं, क्योंकि जब हम परिणाम की चिंता छोड़कर अपने कर्म पर ध्यान केन्द्रित करते हैं तो मन हल्का और खुश रहता है।

16. इंसान को जो मिला है, उसमें ही संतोष करते हुए आनन्द को खोजना चाहिए, क्योंकि उसी में आनन्द खोजने की क्षमता ही असली खुशी प्रदान करती है।

17. इंसान को दूसरों के कल्याण के बारे में भी सोचना चाहिए, क्योंकि दूसरों की मदद करने से आंतरिक सुख मिलता है तथा संतोष बढ़ता है।

18. इंसान को योग भी अवश्य करना चाहिए, क्योंकि योग वह शक्ति है, जो दुखों से दूर रखती है। प्राणायाम, ध्यान और जप करने से मन प्रसन्न रहता है तथा खुशी का आभास होता है।

19. इंसान को सात्विक भोजन को प्राथमिकता देनी चाहिए, क्योंकि आहार और जीवनशैली मन पर सीधे प्रभाव डालते हैं। सात्विक भोजन, इंसान की सोच और उसके आचरण को शांत रखते हुए मन को खुशी प्रदान करता है।

20. खुशी बाहर नहीं, हमेशा मन के भीतर ही होती है। अतः कर्मशील बनो, अपेक्षाएं छोड़ो, मन को साधो, ईश्वर पर भरोसा रखो और जीवन में संतोष रखना सीखो। ऐसा करने से स्थायी एवं सच्ची खुशी स्वयं ही महसूस होने लगेगी।

निष्कर्ष

जो इंसान इन शिक्षाओं में विश्वास नहीं रखते हैं, वह इस सुख-दुख के चक्र से कभी नहीं छूट पाते हैं । इसलिए खुशी उनके पास ज्यादा समय के लिए ठहरती नहीं है तथा हमेशा दुखों का पहाड़ उनके जीवन में बना रहता है । ये शिक्षाएं हमें यही सिखाती हैं कि सुख या दुख में हमें कैसे जीना चाहिए।

गन्ने की फसल में वैश्विक ऊष्मीकरण का परिणाम और प्रबंधन

सुधीर कुमार मिश्र[१], राम नरायन सिंह[१], सोनम[१], संतोष राठोड[१], विक्रांत सिंह[२], कुलदीप सिंह[२], जी. सी. वाकचौरे[१], अजय कुमार सिंह[१], के. सम्मि रेड्डी[१]

[१] भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

[२] पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, फरीदकोट-१५१२०३, पंजाब

परिचय

गन्ना (*Saccharum officinarum* L.) भारत और विश्व की प्रमुख चीनी उत्पादक नकदी फसलों में से एक है। विश्व स्तर पर कुल चीनी उत्पादन का लगभग ७० प्रतिशत हिस्सा गन्ने से और शेष ३० प्रतिशत चुकंदर से प्राप्त होता है। गन्ना एक C4 फसल है, जिसमें सूर्य के प्रकाश को अधिक मात्रा में संग्रहित करने और उसे जैव-द्रव्य में बदलने की क्षमता होती है। इसी कारण इसका उपयोग पर्यावरण-अनुकूल जैव-ईंधन (बायोफ्यूल) के रूप में भी किया जा रहा है। गन्ने की खेती विश्व के १२० से अधिक देशों में की जाती है। इसके प्रमुख उत्पादक देश भूमध्य रेखा के ३६.७° उत्तर से ३१.०° दक्षिण अक्षांश के बीच स्थित हैं, जहाँ उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय जलवायु पाई जाती है तथा समुद्र तल से लगभग १००० मीटर की ऊँचाई तक गन्ने की खेती संभव है। रकबे और कुल उत्पादन के मामले में भारत, ब्राजील के बाद विश्व में दूसरे स्थान पर है, हालांकि उत्पादकता के मामले में भारत का दसवाँ स्थान है। भारत में गन्ने की खेती दो प्रमुख कृषि-जलवायु क्षेत्रों में होती है- (अ) उष्णकटिबंधीय क्षेत्र (महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात और तमिलनाडु), तथा (ब) उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र (उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा और बिहार), जो लगभग ८° उत्तर से ३२° दक्षिण अक्षांश के बीच फैले हुए हैं। देश में उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र प्रमुख गन्ना उत्पादक राज्य हैं। वर्तमान में लगभग ६० लाख किसान प्रत्यक्ष रूप से गन्ने की खेती में लगे हुए हैं, जबकि लगभग ३.५ करोड़ लोग गन्ना आधारित कृषि, चीनी उद्योग और इससे जुड़े अन्य कार्यों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े हुए हैं। इस प्रकार गन्ना भारतीय कृषि विकास के साथ-साथ औद्योगिक अर्थव्यवस्था में भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

गन्ने की जलवायु संबंधी आवश्यकताएँ

गन्ने की फसल पूरे साल खेत में रहती है और सभी प्रमुख ऋतुओं से गुजरती है। इसलिए गन्ने की खेती के लिए अलग-अलग समय पर अलग-अलग मौसम की ज़रूरत होती है। फसल की हर बढ़वार अवस्था में गन्ने की वृद्धि और विकास का वर्तमान मौसम की स्थिति से सीधे प्रभावित होता है। गन्ने की अच्छी बढ़वार के लिए गर्म और आर्द्र जलवायु उपयुक्त होती है, जबकि पकते समय ठंडा, धूप वाला और शुष्क मौसम ज़्यादा लाभकारी माना जाता है। अन्य फसलों की तुलना में गन्ने में मौसम के अनुसार अपने-आप को ढालने की क्षमता अधिक होती है। सामान्य रूप से २० से ४० °C तापमान, १२–१४ घंटे की धूप, ७० प्रतिशत से अधिक आर्द्रता और लगभग १५०० मि.मी. तक वर्षा गन्ने की फसल के लिए अनुकूल मानी जाती है। यदि सिंचाई की अच्छी सुविधा उपलब्ध हो, तो गन्ने की खेती कम वर्षा (५०० मि.मी. से कम) वाले क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। हालाँकि, बहुत अधिक तापमान, लंबे समय तक सूखा, जलभराव या बाढ़, तेज़ आँधी-तूफ़ान जैसी प्राकृतिक आपदाएँ गन्ने की बढ़वार और पैदावार दोनों

को नुकसान पहुँचा सकती हैं। इसके अलावा, उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में धूप की मात्रा भी गन्ने की उपज पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है।

जलवायु परिवर्तन और खराब मौसम गन्ने की पैदावार कम होने के मुख्य कारण हैं। गन्ने की वृद्धि, विकास और गुणवत्ता पर उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के मौसम का अलग असर होता है। उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों की तुलना में उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में गन्ने की पैदावार आम तौर पर ज्यादा होती है, क्योंकि उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में फसल चक्र छोटा होता है। उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में गन्ना केवल ४०–५२ सप्ताह में पकता है, जबकि उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में यह ५२–७२ सप्ताह तक बढ़ता रहता है। उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में नवंबर से फरवरी के बीच ठंडा मौसम होने के कारण गन्ने की बीजाई का समय शरद ऋतु (अक्टूबर–नवंबर), वसंत (फरवरी–मार्च) और देर से (अप्रैल–मई) मौसम तक ही सीमित रह जाता है, जबकि उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में गन्ना पूरे साल रोपा जा सकता है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों जैसे- आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु, में गन्ने को गर्म मौसम का फायदा मिलता है। जब तापमान २०°C से नीचे गिरता है, तो गन्ने की वृद्धि धीमी हो जाती है। इसके अलावा, उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में गन्ने के मुख्य विकास की अवधि उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों की तुलना में दोगुनी से भी अधिक होती है। गन्ने की पैदावार केवल मौसम पर ही नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक कारणों से भी प्रभावित होती है। इसमें अनियमित भुगतान, मजदूरों की कमी, उपज की अनिश्चितता और समय पर उर्वरक या कीटनाशक न मिलना शामिल हैं। साथ ही, गन्ने की कटाई अक्सर चीनी मिलों द्वारा दिए गए टोकन (पर्ची) पर निर्भर होती है। इससे किसान सही समय पर कटाई का निर्णय नहीं ले पाता और पकी हुई फसल खेत में लंबे समय तक रहने से उसकी मात्रा और गुणवत्ता दोनों घट जाती हैं।

गन्ने की फसल का मौसम व जलवायु से संबंध

गन्ने की फसल को अपने लंबे जीवन चक्र में अलग-अलग प्रकार की मौसम और जलवायुवीय कारकों की जरूरत होती है। शुरुआती दौर में तेज और चटक धूप, उच्च तापमान, पर्याप्त बारिश और अधिक आर्द्रता गन्ने की अच्छी वृद्धि, लम्बाई और पैदावार के लिए फायदेमंद होती है। जबकि फसल की परिपक्वता यानी पकते समय शुष्क और साफ मौसम उपयुक्त होता है। अन्य फसलों की तरह ही गन्ने की पैदावार भी विभिन्न मौसम की स्थितियों पर निर्भर करती है, जिसका उल्लेख निम्नवत् है।

तापमान का प्रभाव

गन्ने की वृद्धि और विकास पर तापमान का बहुत असर होता है। शुरुआती अवस्था में तापमान और सूरज की रोशनी महत्वपूर्ण होते हैं। गन्ने के अंकुरण के लिए इष्टतम तापमान २०–३०°C के बीच होता है, और २१°C से नीचे अंकुरण रुक जाता है। गन्ने के पहले तीन महीनों में, यानी अंकुरण से लेकर कल्ले निकलने तक, तापमान और आर्द्रता सीधे-सीधे उत्पादन पर असर डालते हैं। इस समय उच्च तापमान और हल्की शुष्क मौसम की स्थिति पैदावार के लिए अनुकूल मानी जाती है। कल्ले निकलने की अवस्था में भी तापमान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन इस दौरान पानी की उपलब्धता, पौधे से पौधों की दूरी, उर्वरक का प्रबंधन, खरपतवार नियंत्रण और अन्य कृषि तकनीकें कल्लों की संख्या को काफी प्रभावित करती हैं। अच्छी पैदावार के लिए गन्ने को ३०–३५°C के बीच का तापमान

चाहिए। सक्रिय वृद्धि काल में औसत न्यूनतम तापमान २०°C अनुकूल रहता है और इंटरनोड बढ़ने के लिए १८–१९°C का तापमान जरूरी है। गन्ने की वृद्धि पर अत्यधिक तापमान (लगभग ४०°C) और बहुत कम तापमान (लगभग १०°C) दोनों का नकारात्मक असर पड़ता है। २०°C से कम तापमान पर वृद्धि धीमी हो जाती है, लेकिन सुक्रोज यानी चीनी का जमाव बढ़ जाता है। इसके विपरीत, अधिक तापमान सुक्रोज को फ्रुक्टोज और ग्लूकोज में बदलने की प्रक्रिया तेज कर देता है, जिससे चीनी का जमाव कम होता है। अत्यधिक तापमान फूल आने की प्रक्रिया को बढ़ावा देता है। इसका विपरीत बहुत अधिक तापमान पाले के खतरे को कम करता है। वहीं, पाला गन्ने की पौधों की संख्या और गुणवत्ता को घटा देता है। इसके अलावा, अत्यधिक तापमान कई कीड़े-मकोड़े, बीमारियाँ और खरपतवारों को प्रभावित करता है। अधिक गर्मी से पौधों में वाष्पोत्सर्जन की दर तेज हो जाती है।

बारिश के प्रभाव

गन्ना बढ़ने के लिए बारिश या सिंचाई से पर्याप्त पानी की ज़रूरत होती है इसलिए, खासकर गन्ने के सक्रिय वृद्धि काल में बारिश की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ऐसे क्षेत्र जहां सालाना लगभग १२० सें.मी. अच्छी तरह वितरित बारिश होती है, वहां गन्ना अच्छी तरह उगता है। उच्च तापमान और अनियमित बारिश गन्ने की पैदावार पर सकारात्मक या नकारात्मक असर डाल सकते हैं। अगर बारिश कम हो या बिल्कुल न हो, तो फसल में पानी की आवश्यकता बढ़ जाती है और सूखे जैसी स्थिति बन जाती है। मानसून के दौरान बारिश का असमान वितरण और इसके बाद सापेक्ष आर्द्रता में बदलाव गन्ने की कुछ किस्मों में फूल आने का कारण बन सकता है। वर्षा का चीनी परता (सुगर रिकवरी) से नकारात्मक संबंध पाया गया है, क्योंकि अधिक बारिश के कारण पोषक तत्व बह जाते हैं और चीनी की मात्रा कम हो सकती है। गन्ने में पौध-जलन बारिश के साथ नकारात्मक संबंध रखती है, जबकि धूप की अवधि और वाष्पीकरण के साथ संबंध सकारात्मक होता है। गन्ने के अलग-अलग विकास अवस्थाओं में बारिश के प्रभाव भी अलग-अलग होते हैं। प्रारंभिक काल में लगभग ९६ मि.मी. और सक्रिय वृद्धि काल में ४०० मि.मी. से ज़्यादा बारिश इष्टतम उपज के लिए आदर्श मानी जाती है। विकास अवधि के दौरान अच्छी होती है और सुवितरित बारिश गन्ने की पैदावार बढ़ती है। इस तरह, पानी की उपलब्धता और समय पर बारिश गन्ने की उपज और गुणवत्ता दोनों के लिए निर्णायक भूमिका निभाती है।

सौर विकिरण के प्रभाव

सौर विकिरण गन्ने की वृद्धि और विकास में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह पौधों के वातावरण और प्रकाश संश्लेषण गतिविधियों को प्रभावित करता है, जिससे पौधों की वृद्धि और उपज तय होती है। जब पौधों में पर्याप्त वनस्पति आवरण बन जाता है और पानी या पोषक तत्व की कमी नहीं होती, तो सौर विकिरण का बायोमास में रूपांतरण उत्पादन वृद्धि की संभावनाओं को इंगित करता है। प्रति इकाई विकिरण द्वारा पैदा होने वाला वायवीय बायोमास पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्षमता को दर्शाता है, जिसे विकिरण उपयोग दक्षता (RUE) कहा जाता है। गन्ने की पहली फसल में RUE लगभग १.७२ ग्राम प्रति मेगाजूल (g/MJ), जबकि पेड़ी (रैटून) फसल में यह सिर्फ १.५९ ग्राम प्रति मेगाजूल होती है। तनों में बायोमास का संचयन सौर विकिरण के साथ बढ़ता है, लेकिन इसमें पानी, तापमान और गन्ने की किस्म (जीनोटाइप) का भी प्रभाव होता है।

आर्द्रता के प्रभाव

गन्ने की अच्छी वृद्धि के लिए पर्याप्त आर्द्रता की आवश्यकता होती है। दोपहर में उच्च नमी और सही तापमान के साथ धूप वाले मौसम में अधिक कल्ले बनते हैं। वहीं, पकते समय कम पानी की आपूर्ति और मध्यम आर्द्रता उपयुक्त होती है। सुबह और दोपहर की सापेक्ष आर्द्रता गन्ने की वृद्धि और पैदावार पर लगभग समान असर डालती है। दोपहर में अधिक नमी से पैदावार धीरे-धीरे बढ़ती है, लेकिन पकने के समय नमी वाली स्थिति सुक्रोज जमाव के लिए अनुकूल नहीं होती। साथ ही, फसल के विकास काल के अनुसार आर्द्रता का प्रभाव बदलता रहता है। शुरुआत से लेकर पूर्ण फसल वृद्धि तक, आर्द्रता का प्रभाव विभिन्न चरणों में भिन्न होता है।

जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में गन्ने की फसल का प्रबंधन

गन्ने की वृद्धि मौसमीय परिस्थितियों के प्रति बहुत संवेदनशील होती है क्योंकि इसकी हर वृद्धि अवस्था के लिए अलग-अलग प्रकार के मौसम की ज़रूरत होती है। गन्ने की उपज और गुणवत्ता मुख्य रूप से तापमान, वर्षा, धूप और आर्द्रता जैसे मौसमीय कारकों पर निर्भर करती है। गन्ने में किसी भी प्रकार का जल-तनाव प्रकाश संश्लेषण, स्टोमेटल कंडक्टेंस, श्वसन और फोटो-एसिमिलेट, पर्ण-रन्ध्रों के खुलने-समेटने की क्रिया, श्वसन दर और विभिन्न भागें में पोषक तत्वों का विभाजन जैसी महत्वपूर्ण शारीरिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है। जब ये प्रक्रियाएँ संतुलित नहीं होतीं, तो फसल की वृद्धि रुकती है और अंततः गन्ने की उपज कम हो जाती है। गन्ने में किसी भी तरह का पानी का तनाव या सूखा पौधों की महत्वपूर्ण शारीरिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है इसलिए, समय पर सिंचाई सुनिश्चित करना जरूरी है। भविष्य में जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान, बारिश और आर्द्रता में बदलाव गन्ने की पैदावार पर नकारात्मक असर डाल सकते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए, किसान कुछ सरल उपाय जैसे- उपयुक्त किस्मों का चयन करना, सही समय पर बुवाई करना, खेत की तैयारी और पोषण प्रबंधन करना, तथा कीट और रोगों से बचाव आदि अपनाकर गन्ने की पैदावार और गुणवत्ता बनाए रख सकते हैं। इन आसान और प्रभावी उपायों से जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों में कमी और गन्ने की पैदावार सुरक्षित रखी जा सकती है। किसान इन्हें अपनाकर फसल वृद्धि, स्वास्थ्य और चीनी की गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं। ऐसे कुछ महत्वपूर्ण अनुकूलन और शमन उपाय नीचे दिए गए हैं।

I. उचित किस्मों का चयन

गन्ने की अच्छी पैदावार तथा उच्च गुणवत्ता वाली चीनी प्राप्त करने में उपयुक्त किस्मों का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऐसी गन्ना किस्में, जो अधिक तापमान, नमी की कमी एवं अन्य प्रतिकूल मौसमीय परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखती हैं, गर्मी के मौसम में भी बेहतर वृद्धि करती हैं तथा गन्ने में चीनी प्रतिशतता बनाए रखने में सहायक होती हैं। क्षेत्र विशेष की जलवायु परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यदि उत्तम किस्मों का चयन किया जाए, तो गन्ने की उपज के साथ-साथ चीनी की गुणवत्ता में भी उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। किसानों को यह सलाह दी जाती है कि वे अपने क्षेत्र के लिए अनुशंसित, शीघ्र पकने वाली तथा गर्मी-सहनशील गन्ना किस्मों को अपनाएँ। इन किस्मों के उपयोग से जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है तथा गन्ने के उत्पादन के साथ-साथ किसानों की आय में भी स्थिरता बनी रहती है।

II. बुवाई का उचित समय और तरीका

गन्ने की अच्छी फसल लेने के लिए सही समय पर बुवाई करना ज़रूरी होता है। हमारे देश के कई क्षेत्रों में किसान गेहूँ, जौ, चना या मटर जैसी रबी फसलों की कटाई के बाद अप्रैल के अंतिम सप्ताह या मई की शुरुआत में गन्ना लगाते हैं। यह तरीका विशेष रूप से छोटे किसानों में अधिक प्रचलित है, क्योंकि वे गन्ना लगाने से पहले कम अवधि वाली एक अतिरिक्त फसल लेकर अपनी आय बढ़ाना चाहते हैं। हालाँकि, गन्ने का बुवाई देर से करने का सीधा असर फसल की बढ़वार पर पड़ता है। देर से लगाए गए गन्ने में न केवल उपज घट जाती है, बल्कि गन्ने के रस की मात्रा और उसकी गुणवत्ता भी कम हो जाती है। इसलिए बेहतर उत्पादन और अच्छी चीनी प्राप्त करने के लिए समय पर गन्ना लगाना आवश्यक है।

i. शरद ऋतु में बुवाई के प्रभाव

गन्ने की अच्छी पैदावार के लिए शरद ऋतु, विशेषकर अक्टूबर माह में बुवाई करना उपयुक्त माना जाता है। उपोष्णकटिबंधीय भारत में गन्ने में कल्ले बनने के लिए फरवरी से जून तक का समय अनुकूल रहता है। यदि गन्ना शरद ऋतु में लगाया जाए, तो उसे वसंत और गर्मी की फसल की तुलना में कल्ले बनने के लिए अधिक समय मिल जाता है जिससे गन्ने की पैदावार और चीनी रिकवरी दोनों बढ़ती हैं। शरद ऋतु में लगाए गए गन्ने में अंकुरण अच्छा होता है, मिल योग्य गन्नों की संख्या अधिक रहती है और प्रति गन्ने का वजन भी वसंत या गर्मी में लगाई गई फसल की तुलना में ज्यादा होता है। शोध के अनुसार, शरद ऋतु की फसल की तुलना में वसंत में लगाई गई फसल से लगभग २० प्रतिशत तथा गर्मी में लगाई गई फसल से लगभग ४५ प्रतिशत तक कम पैदावार मिलती है। इसलिए किसानों के लिए सलाह है कि यथासंभव गन्ने की बुवाई शरद ऋतु में ही करें। यदि किसी कारणवश वसंत या गर्मी में गन्ना लगाना पड़े, तो समय पर सिंचाई, क्षेत्र के लिए संस्तुत किस्मों का चयन और सही फसल प्रबंधन आवश्यक हैं।

ii. *वसंत ऋतु में बुवाई के प्रभाव*

भारत में गन्ने की खेती फरवरी से मार्च तक की जा सकती है, लेकिन अच्छी एवं स्थिर पैदावार के लिए जमींन और मौसम के अनुरूप उपयुक्त बुवाई तिथि का चयन अत्यंत आवश्यक है। सामान्यतः उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में गन्ने का अंकुरण केवल ३०–३५ प्रतिशत तक होता है, जबकि उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में यह ८०–८५ प्रतिशत तक पाया जाता है। यदि गन्ने की बुवाई फरवरी के बजाय अप्रैल या मई तक टाल दी जाए, तो कल्ले (टिलर) बनने का समय कम हो जाता है, जिससे फसल की कुल पैदावार घट जाती है। वसंत ऋतु में जैसे-जैसे तापमान बढ़ता है, अंकुरण और पौध-स्थापन में बाधा आती है, जिसका सीधा असर गन्ने और चीनी की उपज पर पड़ता है। अच्छी और उन्नत किस्मों का चयन करने से गन्ने की पैदावार में २८ से ६० प्रतिशत तक वृद्धि संभव है। वसंत में लगाए गए गन्ने में कल्लों की संख्या जून महीने तक बढ़ती है, लेकिन इसके बाद धीरे-धीरे घटने लगती है। इसके अलावा, गन्ने की रोपाई में देरी होने पर तना छेदक (इंटरनोड बोरर) कीट का प्रकोप अधिक होता है।

iii. गर्मी ऋतु में बुवाई के प्रभाव

गर्मी में लगाए गए गन्ने की बढ़वार शुरुआत में तेज़ होती है, लेकिन इसमें कल्लों की मृत्यु दर अधिक रहती है। नतीजतन, कुल मिल योग्य गन्नों की संख्या कम रह जाती है। गर्मियों (अप्रैल) में बोए गए गन्ने में अंकुरण लगभग ३० प्रतिशत, जबकि वसंत में बोई गई फसल में यह ३८ प्रतिशत तक होता है। आमतौर पर अप्रैल–मई में लगाए गए गन्ने को अधिक तापमान का सामना करना पड़ता है, जिससे कल्ले बनने की अवधि कम रह जाती है। इसी कारण फरवरी में लगाए गए गन्ने की तुलना में देर (अप्रैल–मई) से बोई गई फसल की पैदावार कम होती है। शोध से यह भी स्पष्ट हुआ है कि गन्ने की बुवाई में देरी से उपज पर सीधा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मिश्रा आदि (२०१६) के अनुसार, फरवरी के बजाय मार्च और अप्रैल में गन्ना बोने से पैदावार में क्रमशः लगभग ४ प्रतिशत और ११ प्रतिशत तक कमी आ सकती है। वहीं, अप्रैल के बजाय मार्च में गन्ना लगाने से पैदावार में लगभग ८ प्रतिशत तक बढ़ोतरी संभव है। किसानों को यह सलाह दी जाती है कि गन्ने की बुवाई यथासंभव अनुशंसित समयावधि में करें तथा अनावश्यक विलंब से बचें, ताकि फसल की अच्छी स्थापना और अधिक उत्पादन सुनिश्चित किया जा सके।

III. बेहतर उत्पादन हेतु अनुशंसित कृषि तकनीकें

खेत की तैयारी: गन्ने की अच्छी फसल के लिए खेत की सही तैयारी बहुत ज़रूरी है। खेत की ३–४ बार जुताई करें और हर जुताई के बाद पाटा लगाएँ। पहली जुताई मिट्टी-पलट (फरो-टर्निंग) हल से करें, ताकि मिट्टी अच्छी तरह पलट जाए और खेत भुरभुरा हो जाए।

गहरी जुताई (सब-सॉइलिंग): हर ३–४ साल में एक बार खेत की गहरी जुताई ज़रूर करें। यह काम खेत तैयार करने से पहले ट्रैक्टर से चलने वाले सब-सॉइलर द्वारा ४५–५० से.मी. गहराई तक और १.० मी. की दूरी पर क्रॉस दिशा में करें। इसके बाद ढेलों को तोड़ने के लिए पाटा लगाएँ और बीज के लिए क्यारी तैयार करें। इससे खेत की सख़्त परत टूटती जाती है, पानी का रिसाव बढ़ता है और जड़ें गहराई तक अच्छी तरह फैलती हैं।

बुवाई का समय: गन्ने की बुवाई के लिए फरवरी के मध्य से मार्च के अंत तक का समय सबसे उपयुक्त होता है। मार्च के बाद जल्दी पकने वाली किस्में नहीं लगानी चाहिए और देर से बुवाई से बचना चाहिए। अगर किसी कारण से बुवाई देर से करनी पड़े, तो ये सावधानियाँ अपनाएँ- मध्यम या देर से पकने वाली किस्मों को प्राथमिकता दें, बीज की मात्रा बढ़ाएँ (प्रति एकड़ लगभग ३०,००० तीन-आँखों वाले सेट), शुरुआती शूट-बोरर का समय पर प्रभावी नियंत्रण करें, क्योंकि देर से बोई गई फसल में इसका प्रकोप ज़्यादा होता है।

बीज का चुनाव: बीज हमेशा स्वस्थ और रोग-मुक्त लें। बीज में लाल सड़न, मुरझान, रैटून-स्टंटिंग और ग्रासी शूट जैसी बीमारियाँ नहीं होनी चाहिए। बुवाई के लिए गन्ने के केवल ऊपरी दो-तिहाई हिस्से का उपयोग करें।

बीज की मात्रा: प्रति एकड़ २० हज़ार तीन-आँखों वाले सेट या १५ हज़ार चार-आँखों वाले सेट या १२ हज़ार पाँच-आँखों वाले सेट का इस्तेमाल करें। लंबे सेट वर्षा आधारित खेती के लिए ज़्यादा उपयुक्त होते हैं। सामान्यतः एक एकड़ की बुवाई के लिए किस्मानुसार ३०–३५ क्विंटल बीज की आवश्यकता होती है। आकार में मोटे गन्नों वाली किस्मों में बीज दर वजन के हिसाब से लगभग १० प्रतिशत अधिक रखें।

बीज उपचार: अच्छे अंकुरण के लिए बुवाई से पहले बीजोपचार ज़रूरी है। इसके लिए बुवाई वाले सेट को रात भर एथ्रेल घोल में भिगो दें। घोल बनाने के लिए १०० लीटर पानी में २५ मि.ली. एथ्रेल ३९ SL मिलाएँ। अगर एथ्रेल उपलब्ध न हो, तो बीजाई वाले सेट को बुवाई से पहले २४ घंटे तक सादे पानी में भिगोना भी लाभकारी होता है।

IV. खरपतवार, रोग और कीट प्रबंधन

१. पारंपरिक खरपतवार प्रबंधन

गन्ने की फसल में प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है, जिसके लिए २–३ बार समय पर निराई-गुड़ाई करें। निराई-गुड़ाई हेतु त्रिफाली, ट्रैक्टर चालित टिलर या रोटरी वीडर का उपयोग किया जा सकता है। अंकुरण के बाद गन्ने की पंक्तियों के बीच पुआल की परत (मल्च) बिछाने से खरपतवार की वृद्धि दब जाती है। इससे मिट्टी में नमी लंबे समय तक बनी रहती है और वाष्पीकरण कम होता है। यह तकनीक विशेष रूप से वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों में गन्ने की फसल की वृद्धि एवं उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होती है।

२. रासायनिक खरपतवार नियंत्रण

(क) अंकुरण-पूर्व छिड़काव (बुवाई के २–३ दिन के अंदर)

चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार और सालाना घासों के नियंत्रण के लिए [(i) एट्राटाफ / सोलारो / मास्टाफ / मार्काज़ीन ५० WP (एट्राज़ीन) – ८०० ग्राम प्रति एकड़, या (ii) सेन्कोर ७० WP (मेट्रिब्यूज़िन) – ८०० ग्राम प्रति एकड़, या (iii) कार्मेक्स / क्लास ८० WP (डायूरॉन) – ८०० ग्राम प्रति एकड़, या (iv) अथॉरिटी NXT ५८ WP (सल्फेंट्राज़ोन + क्लोमाज़ोन) – १००० ग्राम प्रति एकड़] में से किसी एक दवा को २०० लीटर पानी में घोलकर समान रूप से छिड़काव करें।

(ख) विशेष खरपतवार नियंत्रण:

बंस-पत्ता जैसे सख़्त खरपतवारों के नियंत्रण के लिए केवल सेन्कोर ७० WP या कार्मेक्स/क्लास ८० WP का उपयोग करें। जिन खेतों में दिला का प्रकोप हो, वहाँ २०० लीटर पानी में २,४-D सोडियम सॉल्ट ८० WP (८०० ग्राम प्रति एकड़) का अंकुरण के बाद छिड़काव करें। जहाँ इपोमोआ (लपेटा बेल) और अन्य चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार हों, वहाँ २,४-D सोडियम सॉल्ट ८० WP (८०० ग्राम प्रति एकड़) या २,४-D एमाइन सॉल्ट ५८ SL (४०० मि.ली. प्रति एकड़) को २०० लीटर पानी में घोलकर, जब खरपतवार ३–५ पत्ती की अवस्था में हों, तब छिड़काव करें । सावधानी- दवा का छिड़काव हमेशा सही मात्रा में करें, हवा तेज़ न हो और मिट्टी में पर्याप्त नमी हो। इससे दवा का बेहतर असर और फसल को नुकसान नहीं होता है ।

V. पुआल की मल्चिंग

गन्ने में अंकुरण के बाद अप्रैल के मध्य तक, गन्ने की पंक्तियों के बीच मल्च बिछाना बहुत लाभकारी होता है। इसके लिए धान का पुआल, चावल का छिलका, गन्ने का कचरा या पेड़ों की सूखी पत्तियाँ २०–२५ क्विंटल प्रति

एकड़ की दर से समान रूप से फैला दें। पुआल की मल्चिंग से मिट्टी का तापमान कम रहता है और मिट्टी में नमी लंबे समय तक बनी रहती है, जिससे गर्मी के समय फसल को कम तनाव होता है। साथ ही, यह खरपतवारों की बढ़वार को दबाती है और तना छेदक (शूट-बोरर) जैसे कीटों के प्रकोप को भी कम करती है। मल्चिंग बारिश पर निर्भर और सिंचित दोनों दशाओं में गन्ने की पैदावार बढ़ाने में मदद करती है। किसान, पुआल या फसल अवशेषों को जलाने के बजाय मल्च के रूप में उपयोग करें, इससे लागत भी घटेगी और फसल को अतिरिक्त लाभ मिलेगा।

VI. कुशल पोषक तत्व और जल प्रबंधन

१. पोषक तत्व प्रबंधन

पौधों की उचित वृद्धि एवं विकास के लिए कुल 17 आवश्यक पोषक तत्व आवश्यक होते हैं। इनमें से तीन तत्व जैसे- कार्बन (C), हाइड्रोजन (H) तथा ऑक्सीजन (O), वायु एवं जल से प्राप्त होते हैं। शेष 14 तत्व जिन्हें खनिज पोषक तत्व कहा जाता है, मिट्टी या उर्वरकों के माध्यम से उपलब्ध होते हैं। खनिज पोषक तत्वों को मात्रा के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है। प्रमुख पोषक तत्व (नाइट्रोजन (N), फॉस्फोरस (P), पोटैशियम (K)), द्वितीयक पोषक तत्व (कैल्शियम (Ca), मैग्नीशियम (Mg), सल्फर (S)), सूक्ष्म पोषक तत्व (आयरन (Fe), मैंगनीज (Mn), कॉपर (Cu), जिंक (Zn), बोरॉन (B), मोलिब्डेनम (Mo), क्लोरीन (Cl) तथा निकेल (Ni))। ये सभी तत्व पौधों की संरचना, एंजाइम क्रिया, प्रकाश संश्लेषण तथा उपज निर्माण में अनिवार्य भूमिका निभाते हैं तथा गन्ने की सही बढ़वार और अच्छी पैदावार के लिए ज़रूरी होते हैं। इनमें नाइट्रोजन सबसे महत्वपूर्ण पोषक तत्व है, क्योंकि पौधे को मिट्टी से मिलने वाले कुल पोषक तत्वों में लगभग ८० प्रतिशत हिस्सा नाइट्रोजन का होता है। नाइट्रोजन की सही मात्रा और सही समय पर आपूर्ति करने से गन्ने की बढ़वार अच्छी होती है और पैदावार बढ़ती है।

२. जल प्रबंधन

गन्ना एक लंबी अवधि की फसल है, शुरुआती अवस्था में जब पौधा छोटा और नाज़ुक होता है उस समय अक्सर तेज़ गर्मी और सूखा मौसम होता है। इस समय मिट्टी में पर्याप्त नमी बनाए रखना बहुत ज़रूरी है, ताकि फसल पर पानी की कमी का असर न पड़े। गन्ने की कतारों के बीच की दूरी मौसम और रोपण की विधि के अनुसार ७५ से.मी. से १५० से.मी. तक होती है। खुली जगह से पानी का वाष्पीकरण अधिक होता है, जिससे नमी जल्दी उड़ जाती है। देश में केवल लगभग ३५ प्रतिशत गन्ना क्षेत्र में ही सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है, जबकि शेष ६५ प्रतिशत क्षेत्र या तो कम सिंचित है या पूरी तरह वर्षा पर निर्भर है। इसलिए सीमित पानी में भी सही सिंचाई योजना, मल्चिंग और जल-संरक्षण तकनीकों को अपनाकर गन्ने की उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है।

संदर्भ

मिश्रा एस के, सिंह जी और सिंह के (२०१६) उपोष्णकटिबंधीय भारत में विभिन्न बुवाई तिथियों में गन्ने की वृद्धि और उपज का अनुकरण। *जर्नल ऑफ एग्रोमेट* १९: २००-०४

कृषि में अजैविक तनाव प्रबंधन के लिए सूक्ष्मजीवीय रणनीतियाँ

रिंकू डे, अभय कुमार अवस्थी, के. के. पाल, के. सम्मि रेड्डी
भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

विकासशील देशों की ६०% से अधिक जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। वर्ष २०५० तक अनुमानित ९.५ अरब से अधिक विश्व जनसंख्या को भोजन प्रदान करने के लिए हमें सीमित भूमि क्षेत्रों से लगभग ७०% अधिक उत्पादन करना होगा। जबकि, अजैविक तनावों की आवृत्ति और तीव्रता में वृद्धि से फसलों की पैदावार कम हो सकती है। इसलिए, खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए फसल उत्पादन को दोगुना करना आवश्यक है। भूमिगत जल संसाधनों का तेजी से क्षय, लगातार बढ़ते अजैविक और जैविक तनाव, और जलवायु-सहिष्णु फसल किस्मों की अनुपलब्धता उत्पादकता को और प्रभावित कर रहीं हैं। वैश्विक स्तर पर कई फसलों में सूखा, लवणीयता, जलभराव, उच्च वायुमंडलीय तापमान और कई अन्य तनावों के संयोजन के कारण पैदावार में भारी कमी के प्रमाण हैं। अध्ययन बताते हैं कि फसलों में लगभग आधी पैदावार कमी सिर्फ अजैविक तनावों के कारण होती है, जिसमें उच्च तापमान का योगदान ४०%, लवणीयता २०%, सूखा १७%, और निम्न तापमान तनाव १५% है । यह भी उल्लेखनीय है कि पृथ्वी का केवल लगभग ९% भाग ही फसल उत्पादन के लिए उपयुक्त है, जबकि शेष भूमि विभिन्न तनावों के अधीन है। हालाँकि प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में उत्पादकता बढ़ाने के लिए आनुवंशिक संवर्धन सबसे व्यवहार्य विकल्पों में से एक बना हुआ है, लेकिन जब तक उत्तम जलवायु-सहिष्णु किस्में उपलब्ध नहीं हो जातीं, तब तक कृषि के सुधरे तौर-तरीकों के साथ-साथ, मिट्टी और पौधों में रहने वाले सूक्ष्मजीवों पर आधारित शमन रणनीतियाँ, वैकल्पिक समाधान सदृश उपयोग हो सकती हैं।

इस संदर्भ में, मिट्टी और पौधों से जुड़े सूक्ष्मजीवों ने तनाव को कम करने और पौधों को पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाने में सक्षम है। यह अच्छी तरह से ज्ञात है कि लाभकारी सूक्ष्मजीव पौधों की वृद्धि को उत्तेजित करने, पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने, हार्मोन उत्पादन करने और रोगों को नियंत्रित करने जैसी प्रक्रियाओं के माध्यम से उत्पादकता बढ़ा सकते हैं। इनके प्रभाव और भी व्यापक हो सकते हैं। कई जड़-संबद्ध सूक्ष्मजीव जैसे साइटोकिनिन (CK), गिबरेलिन (GB), इंडोल-३-एसिटिक एसिड (IAA), सैलिसिलिक एसिड (SA) और एब्सिसिक एसिड (ABA) का उत्पादन करते हैं, जो पौधों को तनाव से निपटने में मदद करते हैं। ये गतिविधियाँ एंटीऑक्सिडेंट प्रणाली को सक्रिय करने, संगत ओस्मोलाइट्स के संचयन में सहायक होती हैं; प्रकाशसंश्लेषण क्षमता में सुधार करती हैं; कोशिका विभाजन और पर्तिकीय तंत्र (stomatal regulation) को बढ़ावा देती हैं; जड़ प्रणाली के विकास और जल एवं पोषक तत्वों के अवशोषण को उत्तेजित करती हैं। इसके अलावा, एंडोफाइट्स अजैविक तनावों को शारीरिक, जैव रासायनिक और आणविक स्तर पर पौधों को संशोधित करके कम करते हैं। इलकी प्रमुख क्रियाएं हैं- प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (Reactive Oxygen Species, ROS) को कम करने वाले एंज़ाइमों का उत्पादन बढ़ाना; परासरणीय (ओस्मोटिक) संतुलन और पर्तिकीय तंत्र में मदद करना; जड़ की संरचना में बदलाव करना; जड़ विकास

को बढ़ाकर खनिज और जल का अवशोषण बढ़ाना; संचेतक (सिग्नलिंग) मार्गों को सक्रिय करना; और छोटे रासायनिक संदेशवाहक का उत्पादन करना, आदि। इसलिए, तनाव-निवारक सूक्ष्मजीव किसी भी प्रबंधन रणनीति का अभिन्न हिस्सा होने चाहिए, ताकि अजैविक तनावों का उचित प्रबंधन के तथा सतत कृषि उत्पादन सुनिश्चित किया जा सके।

अजैविक तनावों के प्रकार

अजैविक तनाव की स्थितियाँ उन कारकों का समूह हैं जो पौधों की वृद्धि और उत्पादकता के लिए अनुकूल नहीं होतीं। पौधे इन तनावों का सामना शारीरिक, आणविक और/या संरचनात्मक परिवर्तनों के माध्यम से कर सकते हैं। इन तनावों में पोषक तत्वों की कमी, सूखा, लवणीयता, जलभराव या बाढ़, अत्यधिक शीत, पाला, ऊष्मा, उच्च तापमान, सोडियमता (सोडिसिटी), अम्लता, धातु और अधातु विषाक्तता, प्रदूषण आदि शामिल हैं।

अजैविक तनाव की वैश्विक स्थिति

खाद्य अवम कृषि संगठन (फ़ूड एंड एग्रीकल्चर ऑर्गनाइजेशन, FAO) का अनुमान है कि विश्व में ८३३ मिलियन हेक्टेयर से अधिक भूमि लवण-प्रभावित है, जो कुल भूमि का लगभग ८.७% है। लवण-प्रभावित भूमि के सामान्य वर्ग इस प्रकार हैं: हल्की प्रभावित- ६५%, मध्यम प्रभावित- २०%, अत्यधिक प्रभावित- १०%, और गंभीर रूप से प्रभावित- ५%। इसी तरह, मरुस्थलीय विस्तार से निपटने के लिए संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन के अनुसार, वर्ष २०२३ में पृथ्वी की ४८% भूमि में कम से कम एक माह का गंभीर सूखा अनुभव किया गया, जो १९८० के दशक के औसतन से १५% अधिक है। रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया कि १९९०–२०२० के बीच पृथ्वी की ७७.६% भूमि पिछले ३० वर्षों की तुलना में अधिक शुष्क हुई और वैश्विक भूमि का ४०.६% हिस्सा शुष्क भूमि के रूप में वर्गीकृत है, जो पिछले ३० वर्षों में ३७.५% था। इसके अलावा, विश्व की १५% से अधिक भूमि लू व ऊष्मीय तनाव से प्रभावित है, १३५ मिलियन हेक्टेयर भूमि पोषक तत्वों की कमी के प्रति संवेदनशील है, और पृथ्वी की ७५% से अधिक भूमि खराब मानी जाती है। इसके अतिरिक्त, विश्व में जलभराव वाली भूमि का कुल क्षेत्र लगभग ७००–१००० मिलियन हेक्टेयर है, जो पृथ्वी की सतह का लगभग ५–७% है। वैश्विक स्तर पर लगभग ४ बिलियन हेक्टेयर भूमि, या विश्व की बर्फ-मुक्त भूमि का ३०% भाग अम्लीय है, जो विश्व की कृषि योग्य भूमि का लगभग ४०% है। इसलिए, जब तक उपर्युक्त अधिकांश समस्याग्रस्त भूमि क्षेत्रों को कृषि योग्य नहीं बनाया जाता, तब तक सीमित भूमि क्षेत्रों से अधिक उत्पादन करके, और जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों के बीच खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य रहेगा। ऐसे परिदृश्यों में तनाव-सहिष्णु सूक्ष्मजीवों का उपयोग एक व्यवहार्य विकल्प हो सकता है।

सूखा तनाव

सूखा तनाव पौधों के लिए सबसे गंभीर तनावों में से एक है, यह तब उत्पन्न होता है जब जड़ों तक जल की उपलब्धता अपर्याप्त होती है या जब पौधों का वाष्पोत्सर्जन दर बहुत अधिक हो जाता है। ये दोनों परिस्थितियाँ अक्सर उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय जलवायु में अधिक मिलती हैं। सूखा तनाव पौधों के चयापचय और शारीरिक प्रक्रियाओं को कम करता है, जिससे पौधों की वृद्धि और उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। लंबी अवधि तक सूखा तनाव होने पर पौधों की वृद्धि रुक सकती है, पत्तियों और तनों का आकार घट सकता है, और

प्रकाशसंश्लेषण में कमी आ सकती है, अंकुरण-ओज कम हो सकता है और बीज अंकुरण में कमी आ सकती है। सूखा तनाव के जवाब में पौधे एब्सिसिक एसिड का उत्पादन करते हैं जो पर्ण रंध्रों के बंद होने को प्रेरित करता है और तनाव-संबंधित जीनों को सक्रिय करता है, जिससे सूखा सहनशीलता बढ़ती है।

तापमान तनाव

जलवायु परिवर्तन और वैश्विक तापवृद्धि फसल की वृद्धि और उत्पादकता को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। ताप तनाव पौधों की संरचना, जल-संभाव्यता, और प्रकाशसंश्लेषण गतिविधियों में परिवर्तन लाता है, जिससे पौधों की वृद्धि और जैवघनत्व (बायोमास) में कमी आती है। गंभीर तनाव से पत्तियों, फलों और अन्य पौधों के हिस्सों में झुलसाव और रंग बदलना देखा जाता है। कभी-कभी, केवल १°C की मामूली तापमान वृद्धि भी विभिन्न फसलों की पैदावार को ३–७% तक घटा सकती है।

पोषक तत्व-अभाव तनाव

पौध पोषण के दृष्टिकोण से, पोषक तत्व पौधों की वृद्धि, विकास और जीवित रहने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। पौधों की वृद्धि और विकास के लिए सत्रह (१७) आवश्यक तत्व आवश्यक हैं। इनमें से तीन तत्व (कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन वायु और जल से प्राप्त होते हैं, जबकि शेष चौदह (१४) तत्व- नाइट्रोजन (N), फॉस्फोरस (P), पोटैशियम (K), कैल्शियम (Ca), मैग्नीशियम (Mg), सल्फर (S), आयरन (Fe), मैंगनीज (Mn), कॉपर (Cu), जिंक (Zn), क्लोरीन (Cl), बोरॉन (B), मोलिब्डेनम (Mo) एवं कोबाल्ट (Co) मिट्टी से या उर्वरकों के माध्यम से प्रदान किए जाते हैं। पौधे इन तत्वों को आयनिक रूप में अवशोषित करते हैं, और इन तत्वों को अवशोषित करने की उनकी क्षमता मिट्टी में इनके मात्रात्मक वितरण और उपलब्धता पर निर्भर करती है। इनमें से प्रत्येक तत्व पौधे के जीवन चक्र में विशेष भूमिका निभाता है और उनकी आवश्यकता पौध की प्रजाति और वृद्धि के अनुसार बदलती रहती है। पोषक तत्वों की कमी या अधिकता दोनों ही पौधों की वृद्धि और विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं।

लवणीयता तनाव

विश्व स्तर पर मृदा में बढ़ती लवणीयता एक गंभीर चिंता का विषय है। यह कई शारीरिक, जैव रासायनिक और चयापचयी प्रक्रियाओं को प्रभावित करके पौधों के विकास में अवरोध एवं उत्पादकता को सीमित करती है। लवणीयता से तने और जड़ों की वृद्धि कम होती है और ऊतक क्षय (necrosis) हो सकता है। सोडियम क्लोराइड और अन्य लवणों का अत्यधिक संचय जल की कमी की स्थिति उत्पन्न करता है। यह पानी के अवशोषण को घटाता है और कोशिकाओं के भीतर Na^+, K^+, Mg^{2+}, Ca^{2+}, और Cl- जैसे लवणों का संचय बढ़ता है, जिससे आयन विषाक्तता हो जाती है। लवणीयता मिट्टी में N, P, K, सूक्ष्म पोषक तत्वों, कार्बनिक पदार्थ, और सूक्ष्मजीवीय कार्बन बायोमास की उपलब्धता, संचलन और वितरण को प्रभावित करती है। यह पत्ती के आकार, क्लोरोफिल, और प्रकाशसंश्लेषण क्षमता को भी कम करती है और कोशिकीय $K+$ प्रवाह पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। इसके अलावा, लवणीयता बीज अंकुरण को रोकता है और कोशिकीय एवं जैव रासायनिक संतुलन को बाधित करता है।

क्षारीयता तनाव

क्षारीय मिट्टियाँ पौधों को शारीरिक रूप से प्रभावित करती हैं। सोडियम क्लोराइड ($NaCl$) के कारण होने वाले तनाव के अलावा, अन्य लवण जैसे सोडियम कार्बोनेट (Na_2CO_2) और सोडियम बाइकार्बोनेट ($NaHCO_3$) की अत्यधिक सांद्रता भी फसलों के लिए हानिकारक होती है। मिट्टी का pH 2 से अधिक होने पर प्रमुख और सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे फास्फोरस, मैंगनीज, जिंक, कॉपर और आयरन की उपलब्धता कम हो जाती है, जिससे सभी कृषि फसलों में पोषक तत्वों की कमी और ओस्मोटिक तनाव उत्पन्न होता है।

मिट्टी प्रदूषक तनाव

हानिकारक प्रदूषक, भारी धातुएँ, रासायनिक संदूषक अक्सर मिट्टी में संचयित होकर फसलों को प्रभावित करते हैं। कार्बनिक और अकार्बनिक प्रदूषक जैसे कि औद्योगिक अपशिष्टों का निर्वहन, कृत्रिम उर्वरकों और पौध सुरक्षा रसायनों का अत्यधिक उपयोग आदि प्रदूषण करते हैं, जिससे उत्पाद की गुणवत्ता और मात्रा दोनों कम होती हैं और मानव स्वास्थ्य के लिए भी जोखिम उत्पन्न होता है। भारी धातुएँ जैसे पारा (Mercury, Hg), आर्सेनिक (Arsenic, As), कोबाल्ट (Cobalt, Co), मैंगनीज (Manganese, Mn), लौह (Iron, Fe), कैडमियम (Cadmium, Cd), निकल (Nickel, Ni), जिंक (Zinc, Zn), तांबा (Copper, Cu), क्रोमियम (Chromium, Cr) और सीसा (Lead, Pb) मानवजनित गतिविधियों जैसे औद्योगिकीकरण, और शहरीकरण के माध्यम से पौधों पर विषाक्तता बढ़ाकर तथा उनके जीवन और वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण शारीरिक प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप करके हानिकारक प्रभाव डालती हैं।

सूक्ष्मजीवों द्वारा अजैविक तनाव का शमन

मूलतः जड़मंडल (rhizosphere) सूक्ष्मजीव पौधों की वृद्धि और उत्पादकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये सूक्ष्मजीव कई कार्यों में शामिल होते हैं, जैसे पोषक तत्वों का संचालन और अधिग्रहण, वृद्धि हार्मोन का उत्पादन, विभिन्न अजैविक और जैविक तनावों के प्रति सहनशीलता बढ़ाना आदि। जड़मंडल के सूक्ष्मजीवों की कई जातियाँ जैसे *एज़ोस्पिरिलम (Azospirillum), एज़ोटोबैक्टर (Azotobacter), बैसिलस (Bacillus), ब्रैडीराइजोबियम (Bradyrhizobium), बर्कहोल्डेरिया (Burkholderia), एंटरोबैक्टर (Enterobacter), मिथाइलोबैक्टेरियम (Methylobacterium), राइजोबियम (Rhizobium), पैन्टोइया (Pantoea), स्यूडोमोनास (Pseudomonas), ट्राइकोडर्मा (Trichoderma) तथा सायनोबैक्टीरिया (Cyanobacteria)* आदि विभिन्न अजैविक तनावों के प्रभाव को कम करने में सक्षम पाई गई हैं। असुविधाजनक पर्यावरणीय परिस्थितियों में, मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्मजीव जैसे *एक्रोमोबैक्टर (Achromobacter), एज़ोस्पिरिलम (Azospirillum), वैरियोवोरैक्स (Variovorax), बैसिलस (Bacillus), एंटरोबैक्टर (Enterobacter), एज़ोटोबैक्टर (Azotobacter), एरोमोनास (Aeromonas), क्लेब्सिएला (Klebsiella) तथा स्यूडोमोनास (Pseudomonas)* पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने में सक्षम पाए गए हैं। *बर्कहोल्डेरिया फाइटोफर्मैन्स (Burkholderia phytofirmans)* स्ट्रेन PsJN ने मक्का में लवणीय तनाव और गेहूँ में सूखा तनाव को घटाने में सकारात्मक प्रभाव दिखाया है। लाभकारी सूक्ष्मजीव

अजैविक तनाव को कम करने के लिए कई रणनीतियों का उपयोग करते हैं, जैसे कि पौध हार्मोन (phytohormones) का उत्पादन, एथिलीन ऑक्साइड (ethylene oxide) का स्तर कम करना, शुष्कता (ehydration) प्रतिक्रिया में वृद्धि, और एंटीऑक्सिडेंट एंज़ाइमों को कोड करने वाले जीनों की सक्रियता। जड़मंडल के प्रमुख जीवाणु प्रजातियाँ जैसे *Bacillus, Pseudomonas, Azotobacter, Azospirillum, Rhizobium, Burkholderia* और *Serratia* पौधों को विभिन्न अजैविक तनावों से बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। राइजोबैक्टीरिया प्रेरित सूखा सहनशीलता एवं लचीलापन को विभिन्न तनावों के संपर्क में आने पर पौध हार्मोन, रक्षा-संबंधी प्रोटीन, एंज़ाइम, एंटीऑक्सिडेंट और एपॉक्स-पॉलीसैकराइड्स के स्तर में होने वाले परिवर्तनों के रूप में परिभाषित किया गया है।

एक्टिनोमाइसेट्व और अन्य सूक्ष्मजीवों द्वारा अजैविक तनाव का शमन

एक्टिनोमाइसेट्व पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करने तथा अजैविक तनाव के नुकसान को कम करते हैं। ये उच्च लवणीयता, सूखा तथा उच्च तापमान जैसी प्रतिकूल स्थितियों में भी सफलतापूर्वक जीवित रहने और वृद्धि करने में सक्षम होते हैं। जड़मंडल में एक्टिनोमाइसेट्व पोषक तत्वों एवं जल के कुशल उपयोग में सहायक होते हैं, क्योंकि इनमें मिट्टी के कणों को विघटित करने की क्षमता होती है। इसके परिणामस्वरूप ये पौधों की जड़ों के साथ घनिष्ठ एवं स्थायी संबंध स्थापित करते हैं, जिससे पौधों की सहनशीलता और उत्पादकता में वृद्धि होती है। फफूंदों में, वेसिकुलर आर्बस्कुलर माइकोराइजापौधों की शारीरिक, कार्यात्मक तथा जैव-रासायनिक संरचनाओं में अजैविक तनावों को सहन करने वाले परिवर्तन उत्पन्न करती है। तालिका १ में अजैविक तनावों के शमन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले कुछ चयनित सूक्ष्मजीवों के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं।

सूखा तनाव का शमन (Mitigation of Drought Stress)

एंडोफाइटिक सूक्ष्मजीव तथा पौध वृद्धि संवर्धक जड़बासी जीवाणु (Plant Growth Promoting Rhizobacteria; PGPR) पौधों में सूखा अथवा जल-अभाव तनाव के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन सूक्ष्मजीवी क्रियाओं के परिणामस्वरूप पौधे जल-अभाव की परिस्थितियों में भी अपनी वृद्धि बनाए रखने में सक्षम होते हैं, जिससे जल व खनिज पोषक तत्वों का कुशल अवशोषण सुनिश्चित होता है। सूखा-प्रभावित धान के पौधों में सूखा-सहिष्णु एवं वृद्धि संवर्धक *Bacillus altitudinis* FD48 के परागण से, बिना परागण (नियंत्रण) पौधों की तुलना में सापेक्ष जल-अवयव, क्लोरोफिल स्थिरता सूचकांक में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई। इसी प्रकार, आलू की फसल में Bacillus subtilis HAS31 के परागण से सूखा तनाव की स्थिति में प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (ROS) तथा मोनो-डिहाइड्रोएस्कॉर्बेट (MDA) के उत्पादन में कमी आई, जबकि कैटालेज़, पेरॉक्सीडेज़, सुपरऑक्साइड डिसम्यूटेज़ तथा कुल घुलनशील शर्करा की मात्रा में वृद्धि देखी गई। इसके अतिरिक्त, तनाव-सहिष्णु फफूंद *Trichoderma harzianum* ने धान की विभिन्न जातियों में सूखा सहनशीलता को बढ़ाया, जिसके परिणामस्वरूप डिहाइड्रिन, मालोंडियलडिहाइड तथा एक्वापोरिन की मात्रा में वृद्धि हुई और अनेक शारीरिक लक्षणों से संबंधित जीनों की अभिव्यक्ति सक्रिय हुई।

तालिका १: विभिन्न फसलों में अजैविक तनावों को कम करने वाले सूक्ष्मजीव

तनाव	सूक्ष्मजीव	फसल
लवणता	*Azospirillum brasilense*	बाजरा, मटर, चना
	Bacillus spp. REN51N, *Bacillus firmus* J22N, *Pseudomonas fluorescens*	मूँगफली
	Bacillus amyloliquefaciens, *B. insolitus*, *Microbacterium* spp.	गेहूँ
	Bacillus subtilis	*Arabidopsis thaliana*
	Glomus intraradices	मक्का
सूखा	*Azospirillum brasilense*, *Pseudomonas* spp.	मक्का
	Rhizobium spp., *Pseudomonas putida* P5	सूरजमुखी
	Pseudomonas spp., *Variovorax paradoxus*	मटर
	Paenibacillus polymyxa, *Rhizobium tropici*	मूँग
	Azospirillum spp., *Bacillus safensis*, *Ochrobactrum pseudogregnonense*	गेहूँ
	Glomus etunicatum, *G. versiforme*	चना
उच्च ताप	*Pseudomonas* spp. AMK-P6	ज्वार
बाढ़	*Enterobacter cloacae*, *Pseudomonas putida*	टमाटर
ठंड	*Pseudomonas putida*	सरसों
ठंड व उच्च ताप	*Burkholderia phytofirmans*	अंगूर
भारी धातु	*Sanguibacter* spp., *Pseudomonas* spp.	तम्बाकू
	Pseudomonas fluorescens, *Microbacterium* spp.	सरसों
	Methylobacterium oryzae, *Burkholderia* spp.	टमाटर
	Glomus mosseae, *Acaulospora laevis*	मक्का
	Glomus macrocarpum	मक्का
लौह विषाक्तता	*Bacillus subtilis*, *Bacillus* spp., *Bacillus megaterium*	धान

तापमान तनाव का शमन

पौधों से संबद्ध लाभकारी सूक्ष्मजीव पौधों में ताप-सहनशीलता (थर्मोटॉलरेंस) उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये सूक्ष्मजीव हीट एवं कोल्ड शॉक प्रोटीनों के संश्लेषण, बायोफिल्म के निर्माण, ऑस्मो-रक्षक रसायनों के उत्पादन तथा पौधों में संरचनात्मक परिवर्तनों के माध्यम से तापीय तनाव के प्रतिकूल प्रभावों को कम करते हैं। पौध वृद्धि संवर्धक जड़बासी जीवाणु इंडोल-३-एसिटिक अम्ल (IAA), गिबरेलिन तथा साइटोकिनिन जैसे पौध हार्मोनों के उत्पादन एवं स्राव के लिए जाने जाते हैं। वहीं, एंडोफाइटिक सूक्ष्मजीव विभिन्न तनाव परिस्थितियों में एब्सिसिक, सैलिसिलिक तथा जैस्मोनिक अम्लों के स्तर का नियमन करते हैं। एक्सोपॉलीसैकराइड उत्पादक *Bacillus cereus* द्वारा ऊष्मा तनाव के प्रभावों में उल्लेखनीय कमी आई, जिससे टमाटर में जड़ एवं तने की लंबाई, क्लोरोफिल,

जल ग्रहण क्षमता, तथा पुष्पन एवं फलन में वृद्धि दर्ज की गई। इसी प्रकार, ठंड तनाव की स्थिति में टमाटर में *Trichoderma harzianum* के परागण (Inoculation) से प्रकाशसंश्लेषण दर एवं पौध वीकास में वृद्धि हुई, जबकि लिपिड पेरॉक्सीडेशन एवं इलेक्ट्रोलाइट रिसाव में कमी देखी गई। इसके साथ ही प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (ROS) का स्तर घटा तथा पत्तियों में जल एवं प्रोलिन की मात्रा में वृद्धि हुई। अंतःपर्णी सूक्ष्मजीव अथवा PGPR, जो उच्च या निम्न तापमान के प्रति सहिष्णु होते हैं, पौधों में तापीय तनाव को प्रभावी रूप से कम कर सकते हैं। ये ऊष्मा अथवा शीत सहिष्णु सूक्ष्मजीव तनावपूर्ण परिस्थितियों में एंज़ाइमों एवं कोशिका झिल्लियों की स्थिरता बनाए रखने में सहायक होते हैं। गेहूँ की ऊष्मा-सहिष्णु किस्मों से पृथक किए गए *Alcaligenes, Arthrobacter, Bacillus* तथा *Methylobacterium* जैसे लाभकारी जीवाणु तनाव की परिस्थितियों में फसल की सहनशीलता बढ़ाने में सहायक पाए गए हैं। ये जीवाणु जड़ वृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं तथा पोषक तत्वों के अवशोषण की क्षमता में सुधार करते हैं। इसके अतिरिक्त, ये पौधों में तनाव-संबंधी एंजाइमों और एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि को सक्रिय करते हैं। परिणामस्वरूप, ऊष्मा तनाव के दौरान गेहूँ की वृद्धि, विकास एवं जैवभार उत्पादन में उल्लेखनीय सुधार देखा गया है। इस प्रकार, ऐसे सूक्ष्मजीव जलवायु-स्मार्ट गेहूँ उत्पादन के लिए एक प्रभावी जैव-तकनीकी विकल्प प्रदान करते हैं।

लवणीयता तनाव का शमन (Mitigation of Salinity Stress)

पौधों से जुड़े लाभकारी सूक्ष्मजीव लवणीय तनाव को सहन करने हेतु अनेक जैविक एवं शारीरिक रणनीतियों जैसे ऑस्मोलाइट्स (प्रोलाइन, ग्लाइसीन बीटाइन, ट्रेहैलोज़) का उत्पादन, एक्स्ट्रासेल्युलर प्रोटीज़ का संश्लेषण तथा Na^+/H^+ एंटिपोर्टर का सक्रियण का उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त, ये सूक्ष्मजीव पौध वृद्धि हार्मोनों के उत्पादन को भी प्रेरित करते हैं, जिससे पौधों की सहनशीलता में वृद्धि होती है। लवणीय तनाव की अवस्था में पौधों में एब्सिसिक एसिड (ABA) का स्तर बढ़ जाता है, जो जड़ों की रिक्तिकाओं में ऑस्मोलाइट्स के संचय को प्रोत्साहित करता है तथा कैल्शियम (Ca^{2+}) और पोटैशियम (K^+) के अवशोषण को बढ़ाकर लवणीयता के प्रतिकूल प्रभावों को कम करता है। अजैविक तनाव के दौरान पौधों में एथिलीन का संचयन भी होता है। एथिलीन एक आवश्यक पौध हार्मोन एवं संकेतक अणु है, जो वृद्धि, बीज अंकुरण, पकने की प्रक्रिया, जड़ों की लंबाई तथा पत्ती की प्रौढ़ता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हालांकि, उच्च एथिलीन सांद्रता पौधों के लिए हानिकारक होती है। तनाव की परिस्थितियों में सूक्ष्मजीव एक बायोफिल्म का निर्माण करते हैं, जो जड़ों को निर्जलीकरण से बचाने के साथ-साथ पौध–सूक्ष्मजीव अंतःक्रियाओं हेतु अनुकूल सूक्ष्मपर्यावरण बनाए रखते हैं। PGPB नाइट्रोजन के अवशोषण तथा फॉस्फोरस की जैवउपलब्धता को बढ़ाते हैं। इससे, तांबा, लोहा, मैंगनीज तथा जिंक जैसे सूक्ष्म तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि होती है। पोटैशियम-सुलभ करने वाले जीवाणु, जैसे *Burkholderia*, मृदा में उपस्थित असुलभ पोटैशियम को पौधों के लिए उपयोगी रूप में परिवर्तित करते हैं।

लवणीयता की स्थिति में लोहे की उपलब्धता कम हो जाती है। चूँकि लोहा अनेक एंज़ाइमों की क्रियाशीलता तथा क्लोरोफिल संश्लेषण के लिए अनिवार्य है, अतः इसकी कमी पौध वृद्धि को प्रभावित करती है। साइडरोफ़ोर उत्पन्न करने वाले PGPB जड़ों में लोहे के अवशोषण तथा उसके पत्तियों तक परिवहन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साइडरोफ़ोर उत्पादक एंडोफाइटिक *Streptomycetes* द्वारा लोहे की आपूर्ति में सुधार के परिणामस्वरूप जड़ एवं

तने के जैवभार (biomass) में वृद्धि दर्ज की गई है। कई PGPR एवं एंडोफाइटिक सूक्ष्मजीव फसल पौधों में लवणीय तनाव को प्रभावी रूप से कम करने में सक्षम पाए गए हैं। लवणीय परिस्थितियों में इन सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति से पौधों में ग्लाइसीन बीटाइन, प्रोलाइन, ट्रेहैलोज़ तथा एक्सोपॉलीसैकराइड्स (EPS) जैसे ऑस्मोलाइट्स का संचय बढ़ता है। ACC डाइमिनेज़ गतिविधि वाले PGPB लवणीय तनाव के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने में विशेष रूप से प्रभावी सिद्ध हुए हैं। उदाहरणस्वरूप, *Bacillus pumilus* ने लवणीय परिस्थितियों में धान की वृद्धि को प्रोत्साहित किया है। इसी प्रकार, *Acinetobacter* spp. एवं *Pseudomonas* spp. के साथ जौ एवं जई के पौधों के परागण से IAA एवं ACC डाइमिनेज़ की मात्रा में वृद्धि हुई, जिससे लवणीय मृदा में पौध विकास में सुधार देखा गया। *Bacillus pumilus* स्ट्रेन TUAT-१ ने धान में, जबकि *Enterobacter* स्ट्रेन G ने अरहर/राजमा में लवणीय तनाव को कम किया। एंडोफाइटिक जीवाणु जैसे *Bacillus firmus* एवं *Bacillus* spp. ने मूंगफली में, *Curtobacterium* spp. ने सोयाबीन एवं धान में, तथा *Enterobacter ludwigii*, *Bacillus cereus* एवं *Micrococcus yunnanensis* ने धान में लवणीय तनाव के शमन में सकारात्मक प्रभाव दर्शाए हैं। जीवाणुओं के अतिरिक्त, कुछ फफूंद भी लवणीय तनाव को कम करने में सहायक हैं। जड़ एंडोफाइट *Piriformospora indica* ने एंटीऑक्सीडेंट स्तर में वृद्धि के माध्यम से जौ में लवणीय सहनशीलता को बढ़ाया। इसके अतिरिक्त, वेसिकुलर आर्बस्कुलर माइकोराइज़ा (VAM) फफूंद अपने विस्तृत हाइफल नेटवर्क से तनावग्रस्त मृदाओं में जल एवं पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने में सक्षम होती हैं, जिससे पौधों की वृद्धि एवं सहनशीलता में सुधार होता है।

मिट्टी में प्रदूषकों के तनाव का कम करना

सूक्ष्मजीव भारी धातुओं को प्रभावी ढंग से एकत्रित और अलग करते हैं, जिससे ये धातुएं पौधों में जमा नहीं होतीं। सूक्ष्मजीव अघुलनशील यौगिकों को घुलनशील रूपों में बदलकर मिट्टी में आवश्यक पोषक तत्वों का आसान अवशोषण व उनकी जैव-उपलब्धता बढ़ती है। इसी प्रकार, सूक्ष्मजीव भारी धातुओं को रिडक्शन (reduction), ऑक्सीकरण (oxidation), और मिथाइलीकरण (methylation) जैसी प्रक्रियाओं के माध्यम से विषमुक्त कर सकते हैं। कुछ PGPB में फाइटोरिमेडिएशन (phytoremediation) क्षमता होती है और ये प्रदूषित और दूषित मिट्टी में पौधों के विकास में मदद कर सकते हैं। कुछ PGPR साइडरोफोर्स (siderophores) का उत्पादन करते हैं, जो धातुओं की घुलनशीलता बढ़ाने के लिए क्लैपिंग (chelating) यौगिक बनाते हैं। कुछ PGPR द्वारा उत्पादित कार्बनिक अम्ल जैसे ऑक्सैलिक, साइट्रिक, ग्लुकोनिक आदि, धातुओं का पौधों द्वारा अवशोषण बढ़ा सकते हैं। कई रीमेडिएशन तकनीकों का संयोजन, धातु प्रदूषण को कम कर के रीमेडिएटेड मिट्टी में फसलें उगाने में मदद करता है।

भारी धातु प्रदूषित मिट्टी में पाए जाने वाले सूक्ष्मजीव और उनके प्रभाव

Pseudomonas *fluorescens* तथा *Trichoderma* spp. की विभिन्न स्ट्रेनों ने भारी धातु-प्रदूषित मृदाओं में चना फसल की वृद्धि एवं उत्पादन में सुधार किया तथा पौधों द्वारा कैडमियम अवशोषण को उल्लेखनीय रूप से कम किया है। इसी प्रकार, भारी धातु-प्रदूषित खनन क्षेत्रों से पृथक की गई राइजोबैक्टीरियल स्ट्रेनों जैसे- LMR291 (*Pseudarthrobacter oxydans*), LMR340 (*Rhodococcus qingshengii*), LMR249 (*Pseudarthrobacter phenanthrenivorans*) तथा LMR283 (*Pseudomonas*

brassicacearum) ने अत्यधिक विषैले एवं प्रदूषित मृदा परिस्थितियों में *Sulla spinosissima* L. पौधों के सभी विकासात्मक मानकों में उल्लेखनीय वृद्धि प्रदर्शित की। इन पौधों में प्रकाशसंश्लेषी वर्णकों की मात्रा तथा एंटीऑक्सीडेटिव एंज़ाइम गतिविधियों में भी स्पष्ट वृद्धि देखी गई। भारी धातु-सहनशील पौध वृद्धि संवर्धक जीवाणु (Heavy Metal Tolerant–PGPB; HMT-PGPB) भारी धातुओं के हानिकारक प्रभावों को कम करने के साथ-साथ प्रतिकूल परिस्थितियों में पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं। HMT-PGPB कंसोर्टियम के साथ प्रतिरोपण करने से पौधों की वृद्धि में सुधार हुआ तथा तांबा (Cu), कैडमियम (Cd), सीसा (Pb) और जिंक (Zn) जैसी भारी धातुओं की जैव-उपलब्धता में कमी आई। जीवाणुओं के अतिरिक्त, कुछ राइजोफेरिक फफूंदों में विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों को विघटित करने की उत्कृष्ट क्षमता पाई गई है। ये फफूंद प्रदूषित मृदाओं में पौधों को अजैविक तनाव से सुरक्षा प्रदान करने तथा उनकी वृद्धि एवं उत्पादकता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

फाइटो-माइक्रोबायोम दृष्टिकोण

पौधों से जुड़े वे सूक्ष्मजीव, जो पौधे के साथ अविभाज्य एवं स्थायी पारिस्थितिक संबंध स्थापित करते हैं, सामूहिक रूप से फाइटो-माइक्रोबायोम (Phytomicrobiome) कहलाते हैं। फाइटो-माइक्रोबायोम मेज़बान पौधे को विभिन्न प्रकार के अजैविक तनावों के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह पौध विकास हार्मोनों के उत्पादन, जैव-सक्रिय यौगिकों एवं एंटीऑक्सीडेंट्स के संश्लेषण, हानिकारक रसायनों के विषमुक्तिकरण तथा प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (ROS) और मुक्त कणों (free radicals) के नियंत्रण के माध्यम से पौध सहनशीलता को बढ़ाता है। फाइटो-माइक्रोबायोम की कार्यात्मक भूमिकाओं की गहन समझ पौधों में अजैविक तनावों के प्रभावी शमन तथा टिकाऊ कृषि के लिए नई संभावनाएँ प्रदान करती है। पौधे और उनका माइक्रोबायोम एक विशिष्ट साझा सहजीवी संबंध के माध्यम से पारस्परिक विकास, स्वास्थ्य एवं वृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं।

निष्कर्ष

वैश्विक फसल उत्पादन पर अजैविक तनावों का प्रभाव निरंतर बढ़ता जा रहा है। सूखा, लवणीयता, उच्च अथवा निम्न तापमान, क्षारीयता, पोषक तत्वों की कमी तथा जैविक एवं अजैविक प्रदूषक जैसे विभिन्न अजैविक तनाव पौधों की वृद्धि और उत्पादकता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं। इन तनावों के परिणामस्वरूप पौधों में शारीरिक एवं जैव-रासायनिक परिवर्तन उत्पन्न होते हैं, साथ ही आयन विषाक्तता जैसी गंभीर समस्याएँ भी विकसित हो जाती हैं। मानवीय गतिविधियों के बढ़ते हस्तक्षेप के कारण भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन, जल संकट, मृदा क्षरण एवं अपरदन, मृदा लवणीयकरण तथा प्रदूषित मृदाओं की समस्या में तीव्र वृद्धि हुई है, जिससे कृषि प्रणालियाँ और अधिक संवेदनशील हो गई हैं। ऐसी परिस्थितियों में, बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु कृषि को सतत एवं लचीला बनाना अत्यंत आवश्यक हो गया है, ताकि दीर्घकालिक रूप से फसल उत्पादन की स्थिरता एवं खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके।

खाद्य सुरक्षा और स्थिरता को बढ़ाने के लिए सहनशील फसलें

श्रुतर्षी कुंडू , अभय कुमार अवस्थी, सुषमा अवाजी, रिंकू डे, के. सम्मि रेड्डी
भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

हाल के वर्षों में, विश्व ने जलवायु पैटर्न में नाटकीय परिवर्तन देखे हैं। बढ़ते वैश्विक तापमान, सूखा, बाढ़ और अनियमित वर्षा जैसी मौसमीय घटनाओं का कृषि उत्पादन, खाद्य सुरक्षा और स्थिरता पर गहरा प्रभाव पड़ा है। पारंपरिक फसलें बदलते मौसम के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं। इसके समाधान के रूप में, जलवायु-सहनशील फसलों का विकास और उनका व्यापक संवर्धन एक अत्यंत संभावनाशील उपाय है। यह लेख खाद्य सुरक्षा को सुदृढ़ करने और स्थायी कृषि पद्धतियों को प्रोत्साहित करने में जलवायु-सहनशील फसलों की भूमिका का विश्लेषण करता है।

फसलों में जलवायु सहनशीलता

जलवायु सहनशीलता का अर्थ है किसी फसल की बदलती जलवायु परिस्थितियों का सामना करने या उनमें अनुकूलन करने की क्षमता। जलवायु-सहनशील फसलें अत्यधिक तापमान, सूखा, भारी वर्षा, बाढ़, तथा जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ने वाले कीट प्रकोप जैसे तनावों (stresses) को सहन करने की क्षमता रखतीं हैं, जिससे वे प्रतिकूल परिस्थितियों में भी स्थिर उत्पादन सुनिश्चित कर पाती हैं ।

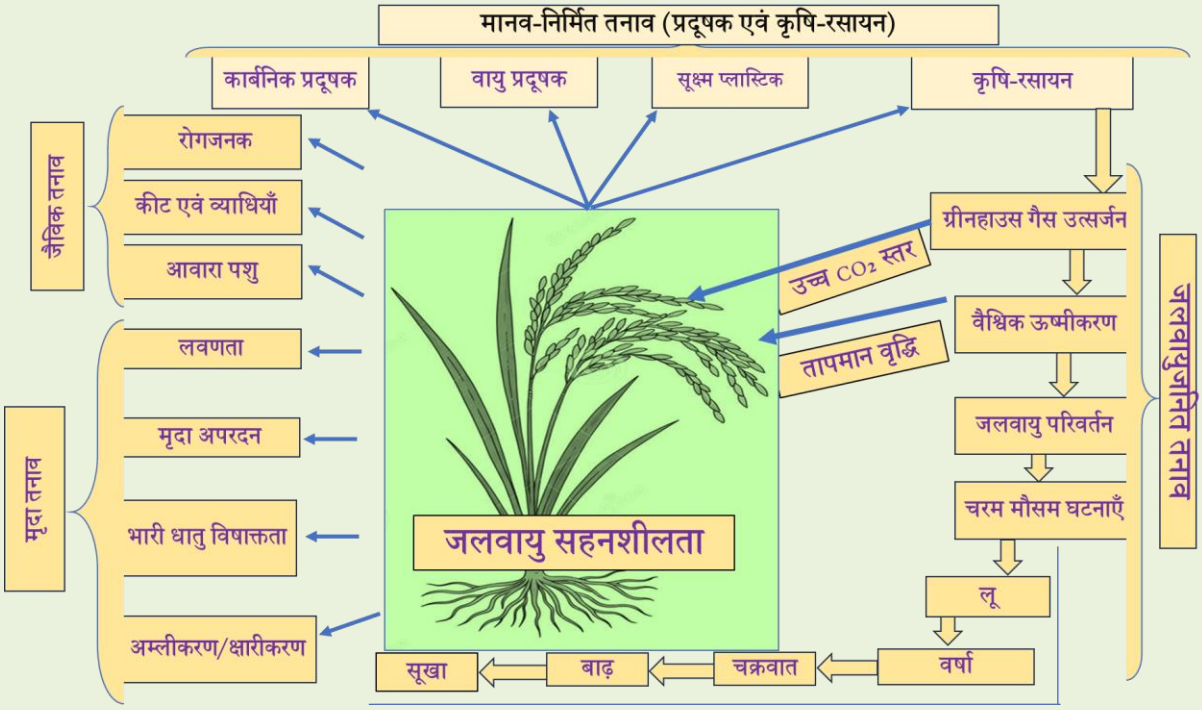

एक जलवायु-सहनशील फसल अनेक प्रकार के तनावों के प्रति प्रतिरोधी होती है। मानव गतिविधियाँ ग्रीनहाउस गैसों, विशेष रूप से कार्बन डाइऑक्साइड, का उत्सर्जन करती हैं, जो वैश्विक ऊष्मीकरण को तेज करती हैं और अंततः जलवायु परिवर्तन का कारण बनती हैं। इसके परिणामस्वरूप चरम मौसम घटनाओं की आवृत्ति में वृद्धि और पौधों की जीवन चक्र संबंधी प्रक्रियाओं में परिवर्तन देखने को मिलता है। इसका अतिरिक्त, मिट्टी की संरचना और गुणवत्ता भी प्रभावित होती हैं जिससे मृदा-संबंधी तनाव बढ़ जाते हैं। किसी फसल को सहनशील माने जाने के लिए उसमें कुछ विशेष गुण या लक्षण होने आवश्यक हैं। इन लक्षणों में शामिल हैं:

1. **सूखा सहनशीलता:** कम जल उपलब्धता की स्थिति में भी फसल के जीवित रहने और उत्पादन बनाए रखने की क्षमता।
2. **बाढ़ प्रतिरोधकता:** बाढ़ के कारण होने वाली जलभराव की स्थिति को सहन करने की क्षमता।
3. **ऊष्मा सहनशीलता:** उच्च तापमान से फसल को होने वाले नुकसान या उसकी वृद्धि में रुकावट को रोकने की क्षमता।
4. **रोग एवं कीट प्रतिरोधकता:** बदलती जलवायु परिस्थितियों में पनपने वाले रोगों और कीटों से प्रभावी रूप से मुकाबला करने की क्षमता।
5. **पोषक तत्व दक्षता:** ऐसी फसलें जो प्रतिकूल या पोषक तत्वों की कमी वाली मिट्टी में भी पोषक तत्वों का प्रभावी ढंग से उपयोग करने में सक्षम होती हैं।

इन जलवायु-सहनशील किस्मों के विकास और प्रसार से किसान अनिश्चित जलवायु परिस्थितियों के अनुकूलन में सक्षम हो सकते हैं तथा कृषि उत्पादकता को स्थायी बनाए रख सकते हैं।

खाद्य सुरक्षा को बढ़ाने में जलवायु-सहनशील फसलों की भूमिका

खाद्य सुरक्षा का अर्थ है ऐसी स्थिति जहाँ सभी लोगों को पर्याप्त, पोषक तत्वों से भरपूर और सुरक्षित भोजन तक पहुँच हो, जिससे वे स्वस्थ जीवन जी सकें। जैसे-जैसे जलवायु परिवर्तन कृषि प्रणालियों को प्रभावित करता रहता है, खाद्य सुरक्षा पर खतरा बढ़ता जा रहा है। विशेष रूप से उन विकासशील देशों में, जो वर्षा-आधारित कृषि पर निर्भर हैं, फसल विफलताओं की घटनाएँ अधिक हो गई हैं। वास्तव में, अंतरसरकारी जलवायु परिवर्तन पैनल (IPCC) ने अनुमान लगाया कि २०५० तक जलवायु परिवर्तन प्रेरित भुखमरी के जोखिम में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकती है।

1. **चरम मौसम घटनाओं से फसल हानि को कम करना**

फसल की वृद्धि को बाधित करने वाली बाढ़, सूखा और लू जैसी चरम मौसमीय घटनाएँ तीव्र होती जा रही हैं। उदाहरण के लिए, अफ्रीका के हॉर्न क्षेत्र में लंबे सूखाकाल के कारण गंभीर खाद्य संकट उत्पन्न हुआ है। पारंपरिक फसलें, जैसे मकई, गेहूं और चावल, विशेष रूप से सूखा और ऊष्मा तनाव के प्रति संवेदनशील होती हैं।

इन क्षेत्रों में, जलवायु-सहनशील फसलें प्रतिकूल मौसम की घटनाओं के दौरान उत्पादन हानि को न्यून करती हैं। अनियमित वर्षा के अनुकूल फसलों का उपयोग करके, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है ।

2. **उत्पादन स्थिरता और पोषण मूल्य में सुधार**

जलवायु-सहनशील फसलें केवल कठिन परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए ही नहीं, बल्कि समय के साथ उत्पादन की स्थिरता बनाए रखने या सुधारने के लिए बनाई जातीं हैं। अनियमित वर्षा वाले क्षेत्रों में, बाजरा, ज्वार और किनोआ जैसी फसलें पारंपरिक अनाज की तुलना में बेहतर प्रदर्शन कर सकती हैं, जिससे किसानों को सूखा या बाढ़ जैसी परिस्थितियों में भी लगातार उत्पादन मिलता है। इसके अतिरिक्त, ये फसलें उच्च पोषण मूल्य के कारण खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। उदाहरण के लिए, किनोआ की फसल प्रोटीन, फाइबर और आवश्यक अमीनो एसिड से समृद्ध होती है, जिससे यह पिछड़े क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा और पोषण को सुदृढ़ करने के लिए उत्कृष्ट मानी जाती है।

3. **फसल विविधता बढ़ाना और एकल फसल पर निर्भरता कम करना**

जलवायु-सहनशील फसलें कृषि उत्पादन में विविधता के अवसर प्रदान करती हैं, जिससे एकल फसल पर अत्यधिक निर्भरता कम होती है। एकल फसल आधारित खेती प्रणाली, जिसमें बड़े क्षेत्रों में केवल एक ही फसल उगाई जाती है, कीट, रोग तथा जलवायु घटनाओं के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती है। उदाहरण के लिए, कई क्षेत्रों में मक्के पर व्यापक निर्भरता होने के कारण, जब तापमान बढ़ता है या वर्षा अनियमित होती है, तो किसानों को फसल विफलता का जोखिम बढ़ जाता है। इसके विपरीत, दलहन, कंद वाली फसलें एवं स्थानीय अनाज जैसी जलवायु-सहनशील फसलों को अपनाने से किसान फसल विफलता के जोखिम को कम कर सकते हैं तथा विविधीकृत कृषि प्रणालियों के माध्यम से खाद्य एवं आजीविका सुरक्षा को सुदृढ़ कर सकते हैं।

4. **लघु एवं सीमांत किसानों की सहनशीलता बढ़ाना**

छोटे किसान, जो प्रायः जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं, जलवायु-सहनशील फसलों को अपनाकर उल्लेखनीय लाभ प्राप्त कर सकते हैं। सीमित सिंचाई सुविधाओं, कमजोर बुनियादी ढांचे तथा अपर्याप्त वित्तीय संसाधनों के कारण ये किसान जलवायु परिवर्तन के जोखिमों के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील होते हैं। सूखा-सहनशील एवं बाढ़-प्रतिरोधक फसलों की खेती से छोटे किसान जलवायु परिवर्तन के गंभीर प्रभावों से स्वयं को सुरक्षित कर सकते हैं। विशेष रूप से कसावा, शकरकंद एवं तारा जैसी कंद फसलें प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों तथा कम उर्वरता वाली मिट्टियों में भी संतोषजनक उत्पादन देती हैं, जिससे निम्न-आय वर्ग के किसानों के लिए स्थिर एवं विश्वसनीय खाद्य स्रोत सुनिश्चित होता है।

5. **सीमांत भूमि में कृषि उत्पादकता बढ़ाना**

जलवायु-सहनशील फसलें अनउपजाऊ एवं सीमांत भूमि को उत्पादक कृषि क्षेत्रों में परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कमजोर मृदा, अल्प वर्षा अथवा उच्च तापमान वाले क्षेत्र पारंपरिक फसलों के लिए

अनुपयुक्त होने के कारण प्रायः कम उपयोग में आते हैं। इसके विपरीत, कैक्टस, टेफ तथा कुछ प्रकार की दलहन जैसी जलवायु-सहनशील फसलें इन प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं। इन फसलों को अपनाने से कुल उपयुक्त कृषि भूमि का विस्तार होता है तथा सीमित उर्वर मृदा वाले क्षेत्रों में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ करने में सहायता मिलती है।

जलवायु-सहनशील फसलें और स्थिरता

कृषि में स्थिरता से आशय ऐसी खेती प्रणाली से है, जो पर्याप्त एवं सुरक्षित खाद्य उत्पादन सुनिश्चित करते हुए पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखे, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करे तथा किसानों के आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण को समर्थन दे। इस संदर्भ में, जलवायु-सहनशील फसलों का विकास एवं उनका व्यापक उपयोग स्थायी कृषि उद्देश्यों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है, क्योंकि ये फसलें बदलती जलवायु परिस्थितियों में भी उत्पादन, संसाधन दक्षता और आजीविका को बनाए रखने में सक्षम होती हैं।

1. **जल उपयोग दक्षता (Water Use Efficiency)**

जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप जल की कमी कृषि के लिए एक प्रमुख चुनौती बन गई है। विश्व के अनेक भागों में कृषि उत्पादन अत्यधिक रूप से जल संसाधनों पर निर्भर है, जो बढ़ते तापमान एवं घटती तथा अनियमित वर्षा के कारण निरंतर दबाव में हैं। जलवायु-सहनशील फसलें कम जल उपलब्धता की स्थिति में भी संतोषजनक वृद्धि एवं उत्पादन बनाए रखतीं हैं। उदाहरणस्वरूप, सूखा-सहनशील फसलों जैसे बाजरा, ज्वार एवं ज्वार को पारंपरिक धान एवं मक्का की तुलना में कम जल माँग के परिणामस्वरूप सिंचाई की आवश्यकता कम होती है। जिससे, जल संसाधनों का संरक्षण होता है तथा जल-उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है।

2. **मृदा स्वास्थ्य और कटाव रोकथाम (Soil Health and Erosion Prevention)**

मृदा स्वास्थ्य, कृषि स्थिरता का एक महत्वपूर्ण पहलू है । दलहनी फसलें जैसे मटर और मसूर मृदा की उर्वरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये फसलें मिट्टी में नाइट्रोजन को स्थायी रूप से संरक्षित हैं, जिससे रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है और मिट्टी का दीर्घकालिक स्वास्थ्य सुधरता है । इसके अतिरिक्त, गहरी जड़ वाली फसलें मृदा कटाव को रोकने और जल धारण क्षमता को बढ़ाने में मदद करती है। इससे मृदा संरक्षण होता है और दीर्घकालिक कृषि स्थिरता में योगदान मिलता है।

3. **कार्बन पदचिह्न को कम करना (Reducing the Carbon Footprint)**

कृषि गतिविधियाँ जैसे रासायनिक उर्वरकों का उपयोग, कृषि मशीनरी में ईंधन की खपत तथा भूमि उपयोग आदि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। जलवायु-सहनशील फसलें कृषि के कार्बन पदचिह्न को कम करने में बहुआयामी भूमिका निभा सकती हैं। उदाहरणस्वरूप, सूखा-सहनशील फसलों को अपनाने से सिंचाई की आवश्यकता तथा अन्य जरूरतें कम होती हैं, जिससे जल पंपिंग से जुड़ी ऊर्जा खपत एवं कार्बन उत्सर्जन में कमी

आती है। इसके अतिरिक्त, ऐसी फसलों को कम रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के साथ उगाकर कृषि उत्पादन संबंधी समग्र पर्यावरणीय प्रभाव और घटया जा सकता है।

4. **बदलते पारिस्थितिकी तंत्र के अनुकूलन और जैव विविधता का संरक्षण**

जैसे-जैसे जलवायु परिवर्तन पारिस्थितिकी तंत्र को बदलता है, विभिन्न फसलों हेतु भूमि उपयुक्तता प्रभावित होती है। कई क्षेत्रीय या पारंपरिक रूप से उगाई जाने वाली किस्में स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल होती हैं, जिससे ये पारिस्थितिकी तंत्र के परिवर्तन के बावजूद सुगमता से फल-फूल सकती हैं। इन फसलों को उगाकर किसान जैव विविधता का संरक्षण कर सकते हैं और स्थानीय प्रजातियों को संरक्षित कर सकते हैं। इसके अलावा, जलवायु अनुकूल फसलों की खेती करने से कीट और रोगों के फैलाव का जोखिम कम होता है।

जलवायु-सहनशील फसलें विकसित करने में जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका

जैव प्रौद्योगिकी ने जलवायु-सहनशील फसलों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आनुवंशिक अभियांत्रिकी (genetic engineering) और आणविक प्रजनन (molecular breeding) के माध्यम से, वैज्ञानिकों ने ऐसी फसलें विकसित की हैं जो जलवायु-संबंधी तनावों के प्रति सहनशीलता को बढ़ाते हैं। उदाहरण के लिए (१) जैविक रूप से संशोधित फसलों (Genetically Modified Crops, GM) को विशेष पर्यावरणीय तनावों जैसे सूखा, क्षारीयता या ऊष्मा के प्रतिरोध के लिए विकसित किया गया है। इसका प्रमुख उदाहरण है *बीटी* कपास (*Bt* Cotton), जो कुछ कीटों के प्रति प्रतिरोधी है । इसी तरह, सूखा-सहनशील जैविक रूप से संशोधित मक्का किस्में भी विकसित की जा रही हैं, जो शुष्क क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने में मदद करती हैं। (२) आणविक प्रजनन तकनीकें जैसे मार्कर-सहायता चयन (marker-assisted selection), फसलों में विशेष आनुवंशिक लक्षणों, जैसे ऊष्मा सहनशीलता या रोग प्रतिरोध क्षमता को लक्षित करके जलवायु-सहनशील किस्मों के तेज विकास में मदद करतीं हैं। संभावित लाभों के बावजूद, कुछ क्षेत्रों में जैविक रूप से संशोधित (genetically engineered) फसलों को अपनाना विवादास्पद बना हुआ है।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन वैश्विक खाद्य आपूर्ति लिए गंभीर चुनौती बना हुआ है। जलवायु-सहनशील फसलें खाद्य सुरक्षा बढ़ाने और कृषि स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण हैं। ये फसलें स्थिर खाद्य उत्पादन, फसल विफलता के कम जोखिम और अनुपयुक्त क्षेत्रों में फसलोत्पादन सुनिश्चित करती हैं। इसके अलावा, कृषि विविधीकरण को बढ़ाने और रासायनों पर निर्भरता कम करने में भी जलवायु-सहनशील फसलें योगदान करती हैं। हालांकि, जलवायु-सहनशील फसलों की व्यापक स्वीकृति उनकी तकनीक तक पहुँच, किसानों के प्रशिक्षण आदि पर निर्भर करती है। जलवायु-सहनशील फसलें केवल एक कृषि क्रांति नहीं बल्कि, खाद्य-सुरक्षित और स्थायी भविष्य की दिशा में एक मार्ग है। सरकारों, अनुसंधान संस्थानों और स्थानीय कृषि समुदायों के बीच सामंजस्य से जलवायु-सहनशील फसलों का वैश्विक कृषि प्रणालियों में सफलतापूर्वक एकीकरण सुनिश्चित किया जा सकता है।

बकरीयों में जूँ: कारण, उपचार और रोकथाम

एन. पी. कुराडे, एस. एस. पवार, ए. वी. निर्मले, संजीव कोचेवाड़, महेश गुप्ता, पी. एल. चव्हाण, मुकेश भेंडारकर, बी. गोपालकृष्णन

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

बकरियों में कई परजीवी जैसे किलनी, पिस्सू, कीड़े, जूँ आदि का खतरा होता है। प्रभावित बकरियों, मनुष्य और दूसरे जानवर से संपर्क इनके संक्रमण के प्रमुख कारण हो सकते हैं। इसलिए, इन परजीवियों से पूरी तरह छुटकारा पाना लगभग संभव नहीं हो पाता हैं, लेकिन पर्याप्त प्रबंधन से बकरियों के स्वास्थ्य पर होनेवाले प्रभाव को कम करना संभव है। राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान के बकरी इकाई (चित्र: १) में देखा गया हैं कि शीत काल में बकरी के शरीर पर जूँ का अधिक संक्रमण पाया जाता है। बार-बार खुजली करना बकरियों में जूँ का एक निश्चित सुराग है। बकरी के पीछे के दोनों पैर जूँ के लिए आदर्श स्थान होता है (चित्र: २)।

चित्र १: राष्ट्रीय अजैविक तनाव प्रबंधन संस्थान बारामती में बकरी इकाई

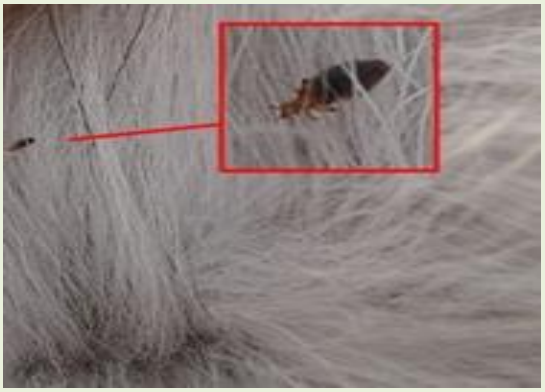

चित्र २: बकरी में जूँ का संक्रमण

बकरियों में जूँ का कारण

जूँ का पूरा जीवन चक्र (चित्र ३) आमतौर पर बकरियों के शरीर पर ही होता है। मादा जूँ शरीर की त्वचा बालों पर अंडे देती हैं। अंडों से जूँ बनने की प्रक्रिया ९-१८ दिनों में पूरी हो जाती है। २८ दिनों की उम्र में जूँ अंडे देना शुरू कर देती हैं और प्रजनन के तुरंत बाद मर जाती हैं। इस प्रकार, एक साल में जूँ की कई-कई पीढ़ियाँ होती हैं। जूँ का संक्रमण पूरे झुंड में एक नए संक्रमित बकरी के आने के साथ होता है। जूँ का जीवन चक्र एक से दूसरे बकरी के में संचरण के साथ शुरू होता है। हालांकि, जूँ अपने मेजबान के बिना सात दिनों से अधिक जीवित रहने में असमर्थ हैं। इसलिए, जूँ की आबादी में साल भर उतार-चढ़ाव होता है, जबकि सबसे कम आबादी गर्मियों के दौरान और अधिकतम सर्दियों और वसंत ऋतु में होती है। बकरी में जूँ संचरण का एक अन्य तरीका यांत्रिक संचरण है, जो बकरियों में कपड़ों और कैची के माध्यम से फैलता है।

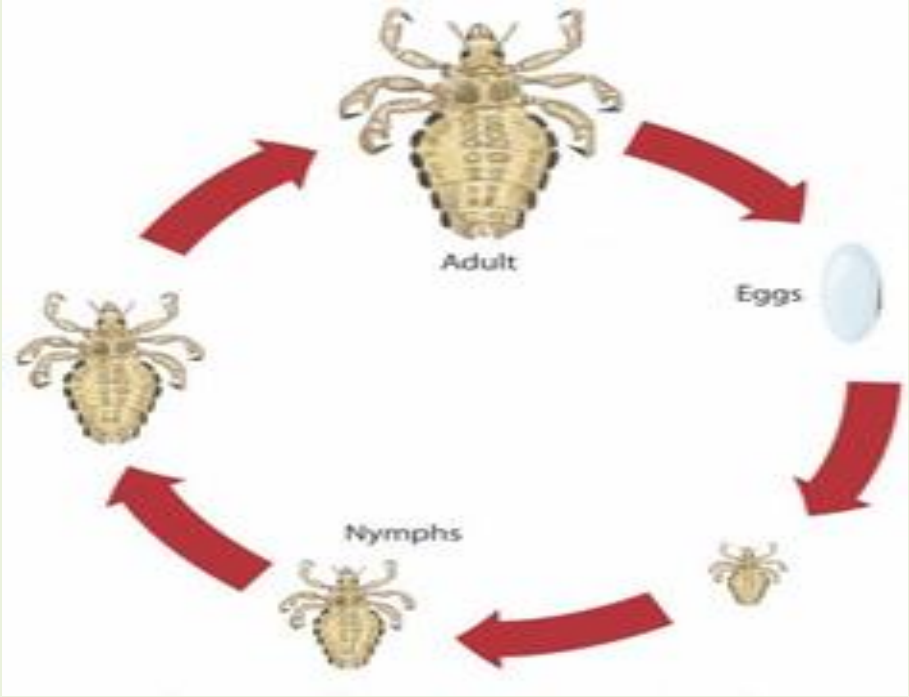

चित्र ३: जूँ का जीवन चक्र

बकरी की जूँ कैसी दिखती है?

बकरियों में जूँ दो अलग-अलग प्रकार की होती हैं। जूँ माइक्रोस्कोप के बिना ठीक से दिखाई नहीं देती हैं।

काटने वाली जूँ :- चित्र ४ (क) में काटने वाली जूँ है। यह आमतौर पर बकरियों की त्वचा और बालों पर अपना पोषण करती हैं। और चबाने वाले अंग को समायोजित करने के लिए उनका सिर थोड़ा चौड़ा होता है | जूँ के शरीर का रंग थोड़ा हल्का होता है और यह गहरे भूरे रंग से भिन्न होता है।

चूसने वाली जूँ:- चूसने वाली जूँ के सिर संकीर्ण होते हैं (चित्र ४ ख) । ये बकरियों का खून चूसने के लिए त्वचा को काटते हैं। इसलिए, चूसने वाली जूँओं का शरीर काटने वाली जूँ की तुलना में गहरे रंग का होता है। आमतौर पर बकरियों के शरीर पर चूसने वाली जूँ का प्रमाण अधिक होता हैं।

चित्र ४: काटने वाली (क) और चूसने वाली जूँ (ख)

क्या जूँ बकरी के बच्चे को मार सकती है?

जूँ स्वस्थ बकरियों के लिए जानलेवा हो सकती हैं हालांकि, जूँ के संक्रमण से बकरियों में खून की कमी (एनीमिया) हो जाता हैं। जूँ बकरी के बच्चे को असहज कर देती हैं और बकरियों की त्वचा में जलन पैदा कर देती हैं। बार-बार खुजली करने से बकरियां अपने बाल खो सकती हैं । कई बार उपचार के बिना बकरियाँ मर भी जाती हैं।

बकरी के जूँ का उपचार

बकरी में पायी जाने वाली जूँ के दो प्रकार के उपचार होते हैं, शरीर के ऊपर (Topical) उपचार और शरीर के भीतर (Systematic) उपचार। उपचार का तरीका बकरियों के शरीर पर मौजूद जूँ के प्रकार पर निर्भर करता है। वाह्य शारीरिक उपचार से काटने वाली जूँ से छुटकारा पाने में मदद मिलेगी। जब पाउडर या तरल सीधे बकरी की त्वचा पर लगाया जाता है, काटने वाली जूँ भाग जाती है। हालांकि, चूसने वाली जूँ के लिए, वाह्य और आंतरिक दोनों उपचार आवश्यक हैं इसके लिए ब्यूटोक्स (deltamethrin, १२.५ मि.ग्रा.), अमीट्राज़ छिड़ककर, अथवा इसमें पशु को पूरा डुबाकर उपयोग कर सकते है।

इवरमेक्टिन एक बहुपयोगी कृमिनाशक दवा है जिसका बाहरी परजीवियों पर आसान प्रभाव पड़ता है। इवरमेक्टिन की दवाईं दो प्रकारों - गोली और द्रव के रूप में मिलती है। इवरमेक्टिन की खुराक, द्रव इंजेक्शन के रूप में १.० मि.ग्रा.प्रति ५० कि.ग्रा. शरीर भारानुसार दी जाती है (चित्र ५ क)। हालांकि, जानवरों का उपचार उनके वजन के अनुरूप होता है। यह कई सारे परजीवियों के खिलाफ व्यापक रूप से असरदार है। इवरमेक्टिन से उपचार आम तौर पर अन्य विकल्पों की तुलना में महंगा होता हैं।

बकरी में जूँ की रोकथाम

- बकरी को ब्यूटोक्स (deltamethrin, १२.५ mg), अमीट्राज़ के घोल में डुबाना जूँ के इलाज के सबसे प्रभावी तरीकों में से एक है (चित्र ५ ख)।
- बकरी को डुबाकर धूप में सूखने के लिए रख दें ।
- पहली बार रसायन में डुबाने की प्रक्रिया सक्रिय जूँ को हटा देगी, जबकि दूसरी बार बकरी को डुबाने पर अंडों से भी छुटकारा पाने में मदद होगी।
- स्प्रेयर पम्प से जूँ से पीड़ित क्षेत्र को ब्यूटोक्स (deltamethrin) स्प्रे करना।

चित्र ५: बकरियों में जूँ का उपचार- (क) इंजेक्शन विधि (ख) डुबाने की विधि

- बाहरी परजीवियों के लिए एक ही बार उपचार पर्याप्त नहीं है। इसलिए, जूँ से स्थायी छुटकारा पाने के लिए बार-बार उपचार आवश्यक है। आमतौर पर प्रारंभिक प्रयोग के २ सप्ताह बाद पुनः घोल में डुबाना अथवा स्प्रे करना आवश्यक है, क्योंकि रसायन एक बार में सभी अंडों को नहीं मार सकते।
- बाहरी परजीवियों के प्रसार को रोकने के लिए जो भी नई बकरिया लाते हैं उसे तत्काल इवरमेक्टिन (ivermectin) से उपचारित करना चाहिए।
- बकरियों के शरीर पर जूँ दिखाई दे तो तुरंत इलाज करें।
- आसपास के क्षेत्र को रसायनों से अच्छी तरह साफ और कीटाणुरहित करें।
- बकरियों के क्षेत्र पर दवाई का छिड़काव करते समय बकरियों को दूसरे स्थानों पर रखे ।
- किसी भी अनावश्यक कीट नियंत्रण से बचें क्योंकि यह बकरियों के साथ-साथ किसान के स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है।

जलभराव की स्थिति में अरहर की प्रतिक्रिया

प्रशांतकुमार एस. हंजगी, सूरज गुंड, सुषमा अवाजी, संतोष राठोड, ए. के. सिंह
भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

अरहर (*Cajanus cajan* L. Millspp.) विश्व स्तर पर उगाई जाने वाली छठी सबसे महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। ऊष्ण और उपोष्णकटिबंधीय जलवायु की एक मुख्य खाद्य फसल है। यह वर्षा आधारित फसल लगभग ६.०८ मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में उगाई जाती है, जिससे लगभग ५.३२ मिलियन मीट्रिक टन उत्पादन होता है । भारत में, अरहर मुख्य रूप से गहरे काली मिट्टी (वर्टिसोल्स) और ६००–१५०० मि.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में उगाई जाती है। हालाँकि यह फसल विविध जलवायु परिस्थितियों के लिए अनुकूल है, परंतु जलभराव इसकी उत्पादकता के लिए एक गंभीर समस्या है। अनुमान है कि विश्व स्तर पर लगभग १०% कृषि भूमि जलभराव से प्रभावित होती है, जिससे ४०–८०% तक उपज में हानि हो सकती है। भारत में, जलभराव के कारण अरहर की वार्षिक उत्पादन में २५–३०% तक की कमी आ जाती है। अरहर में जलभराव के प्रति सहनशीलता को समझने के लिए अब तक सीमित अनुसंधान, इस दिशा में और गहन अध्ययन करने के लिए प्रेरित करते हैं।

जलभराव से मिट्टी में होने वाले परिवर्तन

जलभराव वह स्थिति है जब मिट्टी लंबे समय तक जल से संतृप्त रहती है। यह स्थिति भौगोलिक कारणों, मिट्टी के प्रकार, उच्च जलस्तर, अनुचित सिंचाई या निकासी की कमी के कारण भी उत्पन्न हो सकती है। अत्यधिक जल मिट्टी में गैसीय संचरण को प्रभावित करता है क्योंकि ऑक्सीजन का प्रसार जल में वायु की तुलना में धीमा होता है। परिणामस्वरूप, ऑक्सीजन की कमी और CO_2 का संचय होने से मिट्टी में विषाक्तता और सूक्ष्मजीवों की गतिविधियों में परिवर्तन होता है। यह स्थिति धीरे-धीरे *हाइपॉक्सिक* (कम ऑक्सीजन) से *एनेऑक्सिक* (पूर्ण ऑक्सीजन रहित) अवस्था में पहुँच जाती है, जिससे मिट्टी और पौधे दोनों में संतुलन (होमियोस्टेसिस) बिगड़ जाता है। फलस्वरूप, मिट्टी में वायवीय (एरोबिक) से अवायवीय (एनेरोबिक) सूक्ष्मजीवों की ओर झुकाव, विषैले यौगिकों का संचयन तथा पोषक तत्वों की उपलब्धता घट जाती है। जलभराव से मिट्टी की रेडॉक्स क्षमता (Eh) घट जाती है, जो ऑक्सीजन स्तर और पोषक तत्व उपलब्धता का प्रमुख सूचक है। साथ ही, मिट्टी का pH सामान्यतः तटस्थता की ओर बढ़ता है, जिससे खनिजीकरण, नत्रजनीकरण और यूरिया अपघटन जैसी प्रक्रियाएँ प्रभावित होती हैं।

अरहर में जलभराव से प्रभावित चयापचय (Metabolism)

जलभराव की स्थिति में सबसे पहले पौधे की जड़ों में माइटोकॉन्ड्रियल श्वसन रुक जाता है, जिससे ऊर्जा (ATP) का उत्पादन घट जाता है। इस स्थिति में पौधा वैकल्पिक *किण्वन मार्ग* अपनाता है, जहाँ एक ग्लूकोज़ अणु से केवल २ ATP बनते हैं, जबकि सामान्य परिस्थितियों में ३६ ATP बनते हैं। ATP की कमी की आपूर्ति के लिए पौधा ग्लाइकोलाइसिस प्रक्रिया तीव्र करता है, जिससे *एनेरोबायोसिस प्रेरित प्रोटीन* (ANPs) जैसे सुक्रोज, सिंथेज़ और

अल्कोहल डीहाइड्रोजनेज़ की अभिव्यक्ति बढ़ जाती है । यह अनुकूलन पौधे को सीमित ऊर्जा के बावजूद जीवन बनाए रखने में मदद करता है।

आकृति एवं शारीरिक परिवर्तन (Morpho-physiological changes)

अरहर में जलभराव का पहला प्रभाव पर्ण-*रंध्रों (stomata)* के बंद होने के रूप में दिखाई देता है, जिससे जल और गैस विनिमय बाधित हो जाता है। जड़ की पारगम्यता घटने और जल परिवहन सीमित होने के कारण पौधे में आंतरिक *जल-अभाव* की स्थिति उत्पन्न होती है। प्रकाश संश्लेषण दर, अंतःकोशिकीय CO_2 सांद्रता, और वाष्पोत्सर्जन दर, PS-II क्वांटम उत्पादन में कमी हो जाती है। क्लोरोफिल और घुलनशील प्रोटीन की मात्रा घटने से कार्बन आत्मसात करने की क्षमता कम हो जाती है। फलस्वरूप, पौधे की ऊँचाई, पत्तियों का आकार, जड़ की लंबाई और शाखाओं की संख्या में कमी आती है।

प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियाँ (ROS) और उनका अपघटन

जलभराव के दौरान ऑक्सीजन की कमी से Reactive Oxygen Species, *ROS* जैसे सुपरऑक्साइड और हाइड्रोजन पेरॉक्साइड का स्तर बढ़ जाता है, जिससे *ऑक्सीडेटिव तनाव* उत्पन्न होता है जोकि, लिपिड के ऑक्सीकरण द्वारा कोशिका झिल्ली को नुकसान पहुँचाता है। इस ROS वृद्धि के जवाब में पौधों में *एंटीऑक्सीडेंट एंजाइम* जैसे सुपरऑक्साइड डिसम्यूटेज़ (SOD), कैटालेज़ (CAT), और पेरॉक्सीडेज़ (POD) की सक्रियता बढ़ जाती है। साथ ही, अल्कोहल डीहाइड्रोजनेज़ की सक्रियता भी बढ़ती है जो NAD^+ पुनर्जीवित करने में सहायक है ।

शारीरिक एवं संरचनात्मक अनुकूलन (Anatomical and other adaptations)

अरहर पौधे में ऑक्सीजन की कमी के दौरान तने-जड़ संयोग स्थान पर *हाइपरट्रॉफाइड लेंटिसेल्स* का निर्माण होता है, जो ऑक्सीजन के परिवहन और विषैले उपोत्पादों के निष्कासन में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त, जड़ों में *लाइसिजेनस एरेनकाइमा* बनता है, जो जड़ ऊतकों के विघटन से निर्मित वायु गुहाओं के रूप में ऑक्सीजन के प्रवाह को सुगम बनाता है। मूल जड़ों की क्रियाएँ *सहायक जड़ों* द्वारा प्रतिस्थापित हो जाती हैं। इन संरचनात्मक अनुकूलनों में *एथिलीन* और *ऑक्सिन* हार्मोन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

निष्कर्ष

जलभराव की स्थिति में अरहर के पौधे अपनी सहनशीलता के अनुसार विभिन्न स्तरों पर अधोलिखित परिवर्तन करते हैं —

- ऊर्जा उत्पादन के वैकल्पिक मार्ग अपनाता है,
- प्रकाश संश्लेषण और वृद्धि में परिवर्तन करता है,
- ROS के विरुद्ध एंजाइमिक और गैर-एंजाइमिक सुरक्षा तंत्र सक्रिय करता है,
- संरचनात्मक रूप से जड़ों में एरेनकाइमा और सहायक जड़ें विकसित करता है।

ये सभी परिवर्तन पौधे को प्रतिकूल परिस्थितियों में जीवित रहने में सक्षम बनाते हैं।

वैश्विक तापमान वृद्धि का फसल उत्पादन पर प्रभाव

सेको-यू थेले, अभय कुमार अवस्थी, सुषमा अवाजी, रिंकू डे, के. सम्मि रेड्डी
भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

वैश्विक तापमान वृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) हमारे समय की सबसे महत्वपूर्ण पर्यावरणीय समस्याओं में से एक है। यह कई प्रभाव पैदा करती है, जिनमें से एक प्रमुख प्रभाव कृषि क्षेत्र पर पड़ता है। वैश्विक जनसंख्या और खाद्यान्न मांग तेजी से बढ़ रही है। जलवायु परिवर्तन के कारण इस बढ़ती खाद्य मांग को पूरा करना कठिन होता जा रहा है। तापमान वृद्धि, सूखा, और चरम मौसम की घटनाएँ पहले ही कई देशों में फसल उत्पादन कम कर चुकीं हैं और अब भी लगातार खाद्य संकट पैदा कर रहीं हैं। इस वैश्विक समस्या का हल हमारे भविष्य के लिए अनिवार्य है। जलवायु-प्रतिरोधी फसलों का विकास, उत्तम जल प्रबंधन, और टिकाऊ कृषि को अपनाना आदि खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में मदद कर सकते हैं। कृषि वैश्विक खाद्य सुरक्षा की रीढ़ है, जो रोजगार, आर्थिक स्थिरता प्रदान करती है और दुनिया भर में अरबों लोगों के जीवन को संजोए रखती है। बढ़ती जनसंख्या, तेजी से शहरीकरण और बदलती आहार प्राथमिकताओं के कारण वैश्विक खाद्य मांग लगातार बढ़ रही है। इसलिए, भविष्य की मांग को पूरा करने के लिए वैश्विक कृषि उत्पादन को बढ़ाना आवश्यक है। हालांकि, इस वृद्धि को हासिल करना चुनौतीपूर्ण है। बढ़ते तापमान, अनियमित वर्षा और अन्य चरम मौसम घटनाओं से फसल वृद्धि व गुणवत्ता घट रही है तथा कीट और रोगों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ रही है। तापमान तनाव, जल और मृदाक्षरण अधिक होने से किसानों को नई चुनौतियों के अनुकूल ढलना पड़ रहा है। छोटे किसानों पर इसके परिणाम विशेष रूप से गंभीर हैं। यदि इस पर ध्यान नहीं दिया गया, तो ये बदलाव खाद्य संकट, बढ़ती कीमतें और वैश्विक भुखमरी पैदा कर सकते हैं। विश्व मौसम विज्ञान संगठन (WMO) और अगले कुछ वर्षों में वैश्विक औसत तापमान के पूर्व-औद्योगिक स्तर से १.५°C तक पहुँचने की लगभग ४०% संभावना है, जो २०२७ से पहले भी हो सकती है (IPCC, २०२१)। मानव जीवन और अर्थव्यवस्थाओं को बनाए रखने में कृषि के महत्व को देखते हुए, जलवायु परिवर्तन और कृषि के बीच जटिल संबंध को समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है। वैश्विक तापमान वृद्धि के कारण सूखा, लू और अनियमित वर्षा की आवृत्ति बढ़ रही है, जिससे किसानों के लिए स्थिर फसल उत्पादन बनाए रखना कठिन हो गया है। प्रमुख चुनौतियों की पहचान कर, उपयुक्त शमन तथा अनुकूलन रणनीतियों की खोज करके, नीति-निर्माता, वैज्ञानिक और किसान मिलकर वैश्विक ऊष्मीकरण के प्रभाव को कम कर सकते हैं और भविष्य की पीढ़ियों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित कर सकते हैं।

वैश्विक तापमान वृद्धि

वैश्विक तापमान वृद्धि अर्थात् है पृथ्वी के वायुमंडल के औसत तापमान में वृद्धि। इसे एक प्राकृतिक घटना माना जाता है, लेकिन औद्योगिक क्रांति के बाद मानव गतिविधियों ने तापमान वृद्धि की दर को बढ़ा दिया है। वर्ष २०२५ को अब तक का तीसरा सबसे गर्म वर्ष माना जा रहा है। वैश्विक ऊष्मीकरण जलवायु परिवर्तन का प्रमुख घटक है जो मुख्य रूप से कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड जैसे ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन से होता है।

वैश्विक तापमान वृद्धि के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं

जीवाश्म ईंधन: जीवाश्म ईंधन का अधिक उपयोग वैश्विक तापमान वृद्धि का मुख्य कारण है, क्योंकि कोयला, तेल और गैस जलाने से कार्बन डाइऑक्साइड और नाइट्रस ऑक्साइड जैसी ग्रीनहाउस गैसें निकलती हैं। जीवाश्म ईंधन वैश्विक तापमान वृद्धि का प्रमुख स्रोत है, क्योंकि कोयला, तेल और गैस जलाने से कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड इत्यादि ग्रीनहाउस गैसें उत्पन्न होती है।

वनों की कटाई: बृक्ष वायुमंडल से CO_2 को अवशोषित करके जलवायु नियंत्रण में मदद करते हैं। इन्हें काटने से इनका यह सकारात्मक प्रभाव समाप्त हो जाता है और पेड़ों में संग्रहीत कार्बन वायुमंडल में मुक्त हो जाती है।

सघन कृषि: सघन कृषि पद्यति, जिसमें वृहद पशुपालन, पौध संरक्षण उत्पाद और उर्वरक का उपयोग शामिल है, भी वैश्विक तापमान वृद्धि का एक कारण है। वास्तव में, गाय और भेड़ अपने भोजन को पचाते समय बड़ी मात्रा में मीथेन उत्पन्न करती हैं, जबकि उर्वरक नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जित करते हैं।

कचरा निपटान: लैंडफिल और दहन जैसी कचरा प्रबंधन विधियाँ विषैली ग्रीनहाउस गैसों को उत्सर्जित करती हैं। ये विषैली गैसें ग्रीनहाउस प्रभाव बढ़ाने में योगदान देती हैं। जिससे गर्मी, ठंड, सूखा और विषाक्त तनाव जैसे विभिन्न अजैविक तनावों सक्रिय हो गए है ।

खनन: आधुनिक अर्थ ब्यवस्था खनन और धातु उद्योग पर अत्यधिक निर्भर है। धातुएँ और खनिज निर्माण, परिवहन और उद्योगिक उत्पादन में कच्चे माल के रूप में उपयोग किए जाते हैं। खनन से लेकर उत्पाद की आपूर्ति कुल ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन का लगभग ५% हिस्सा उत्सर्जित करता है।

अत्यधिक उपभोग: अत्यधिक उपभोग भी जलवायु परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह प्राकृतिक संसाधनों के अति-उपयोग और अंतर्राष्ट्रीय परिवहन से होने वाले उत्सर्जन का कारण है, जो वैश्विक तापमान में वृद्धि करते हैं।

वैश्विक तापमान वृद्धि व जलवायु परिवर्तन

वैश्विक तापमान व जलवायु परिवर्तन हमारे समाज को कई तरीकों से प्रभावित करता है जैसे- सूखा खाद्य उत्पादन और मानव स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचा सकता है, बाढ़ रोगों के फैलाव, मृत्यु, और पारिस्थितिक तंत्र व बुनियादी ढांचे को नुकसान पहुँचाने का कारण बन सकती है। सूखा, बाढ़ और अन्य चरम मौसम की स्थितियाँ मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा बढ़ा सकते हैं, खाद्य उपलब्धता को प्रभावित कर सकते हैं, और कामगारों की कार्यक्षमता को सीमित कर सकते हैं। जिसका परिणाम अर्थव्यवस्था और सकल उत्पादकता पर पड़ता है। कृषि, मौसम और जलवायु के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है और भूमि, जल व अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करती है। जहाँ जलवायु में बदलाव कुछ क्षेत्रों में फसल की अवधि कम कर सकता है, वहीं अन्य क्षेत्रों में कृषि को और कठिन बना देता है। कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव इस बात पर निर्भर करेंगे कि परिवर्तन की दर और गंभीरता कितनी है, तथा किसान और पशुपालक इस बदलाव के प्रति कितनी कुशलता से अनुकूलन कर सकते हैं। जैसे-जैसे तापमान बढ़ता है, कुछ फसलें पारंपरिक क्षेत्रों में कम उपयुक्त हो सकती हैं, जबकि नए क्षेत्र कृषि के लिए उपयुक्त बन सकते हैं। बदलते तापमान के कारण कीट और रोग भी पनप सकते हैं, जिससे अतिरिक्त चुनौतियाँ पैदा होती हैं। सारांश में, जलवायु परिवर्तन के कारण फसल पैटर्न में बदलाव का गहरा असर आर्थिक और सामाजिक कारकों पर पड़ सकता है।

फसल की पैदावार पर वैश्विक तापमान वृद्धि का प्रभाव

फसल पैटर्न में बदलाव: तापमान वृद्धि से पारंपरिक फसलें कुछ क्षेत्रों में अनुपयुक्त हो जाती हैं और नए क्षेत्रों में कृषि का विस्तार होता है। इससे फसल चयन, पैदावार और कीट–रोग की घटनाओं में परिवर्तन आता है।

तापमान जनित तनाव: इष्टतम सीमा से अधिक तापमान फसलों में तापतनाव उत्पन्न करता है, जिससे प्रकाश संश्लेषण, दानों का आकार और उपज दर घटती है। गेहूँ, धान व मक्का विशेष रूप से प्रभावित होती हैं।

चरम मौसम की घटनाएँ: सूखा, बाढ़ और लू जैसी घटनाएँ फसल क्षति, मृदाक्षरण और सकल उत्पादन में भारी कमी का कारण बनती हैं। जलवायु परिवर्तन से इन घटनाओं की आवृत्ति और तीव्रता बढ़ रही है।

अनियमित मानसून: मानसूनी अनिश्चितता वर्षा-आधारित कृषि को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। असमान वर्षा, मानसून का देर से आगमन और लंबी शुष्क अवधि फसल वृद्धि और जल उपलब्धता को बाधित करती हैं।

कीट और रोग का बढ़ती प्रकोप: उच्च तापमान और आर्द्रता कीटों और रोगों के प्रसार को बढ़ावा देती है, जिससे फसल हानि बढ़ती है। इससे कीटनाशकों पर निर्भरता और उत्पादन लागत बढ़ जाती है।

मृदा अपरदन और पोषक तत्वों की कमी: अत्यधिक तापमान और भारी वर्षा मृदा अपरदन के कारण पोषक तत्वों की हानि को बढ़ाते हैं। कमजोर मृदा स्वास्थ्य से फसल उत्पादकता में गिरावट आती है।

कार्बन डाइऑक्साइड स्तर में वृद्धि: उच्च CO_2 स्तर से कुछ फसलों में उपज बढ़ सकती है, लेकिन ताप और जल तनाव के कारण यह लाभ सीमित हो जाता है। साथ ही, फसलों की पोषण गुणवत्ता भी घट सकती है।

आजीविका और खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव: घटती पैदावार से खाद्य सुरक्षा और किसानों की आय प्रभावित होती है। छोटे और सीमांत किसान जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।

फसलों पर वैश्विक ऊष्मीकरण का प्रभाव

विश्वभर में प्रमुख खाद्य फसलों की उत्पादकता वैश्विक ऊष्मीकरण के कारण कम हो रही है। बढ़ते तापमान के कारण पुष्पन व दाना भरने की अवधि कम हो जाती है, फूल झड़ जाते हैं, और अंततः फसलों की पैदावार में कमी आती है। तापमान में वृद्धि तीन प्रमुख फसलों (मक्का, गेहूँ और चावल) की अवधि में कमी और वाष्पोत्सर्जन दर को तेज कर देता है। गर्म जलवायु कीटों और रोगों के प्रसार को बढ़ाकर फसल लागत में वृद्धि करता है । हालाँकि अधिक CO_2 स्तर C_3 फसलों में प्रकाश संश्लेषण को बढ़ा सकता है, लेकिन गर्मी तनाव, पोषक तत्वों की कमी और नमी की कमी के कारण फसल उत्पादकता में गिरावट आती है। बढ़े हुए वाष्पोत्सर्जन से मिट्टी तेजी से सूखती है और फसलों में जल तनाव बढ़ता है, जिससे उपज को नुकसान पहुँचता है। समग्र रूप से, निष्कर्ष दर्शाते हैं कि वैश्विक ऊष्मीकरण कृषि में हानिकारक प्रभाव है।

पर्यावरण–अनुकूल व जलवायु परिवर्तन शमन

फसल की पैदावार पर वैश्विक तापमान वृद्धि के नकारात्मक प्रभावों को कम करने के लिए निम्न रणनीतियाँ अपनाई जानी चाहिए।

जलवायु-सहनीय फसलों का विकास: सूखा-सहनीय और ऊष्मा-प्रतिरोधी फसल किस्मों का प्रजनन बदलती जलवायु परिस्थितियों में पैदावार बनाए रखने में मदद कर सकता है।

जलवायु-सहनीय कृषि प्रथाएँ: फसल विविधीकरण, कंटूर फार्मिंग, वर्षा जल संरक्षण, और जल-कुशल सिंचाई आदि जलवायु-सहनीय तकनीकों द्वारा कृषि की जलवायु परिवर्तन के प्रति सहनशीलता बढ़ाई जा सकती है।

जल प्रबंधन : सुव्यवस्थित सिंचाई प्रथाओं, वर्षा जल संचयन और प्रबंधन के माध्यम से जल उपयोग दक्षता बढ़ाकर कृषि पर जल संकट के प्रभाव को कम किया जा सकता है। जब जल की बर्बादी कम होती है, तो किसानों को फसल की उत्पादकता में सुधार देखने को मिलता है।

नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों व ऊर्जा दक्षता को बढ़ावा: सौर व पवन ऊर्जा जैसी नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग करके ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम किया जा सकता है। उद्योगों, भवनों और परिवहन में ऊर्जा दक्षता बढ़ाकर कार्बन उत्सर्जन को कम किया जा सकता है।

वनों की सुरक्षा, वन-कृषि प्रणाली और संरक्षण कृषि: वनों की सुरक्षा और पुनर्स्थापना से वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित करने में मदद मिलती है। वन-कृषि प्रणाली में एक ही भूमि पर पेड़ों और फसलों का समन्वय किया जाता है, जो मृदा संरक्षण, जल धारण क्षमता में सुधार और जैव विविधता बढ़ाने जैसे कई लाभ प्रदान करता है। वहीं, संरक्षण कृषि, न्यूनतम मृदा विघटन, फसल चक्र और मृदा आवरण के माध्यम से कृषि-स्थिरता बढ़ा कर जल और मृदा संरक्षण में मदद मिलती है।

सतत कृषि प्रथाओं को लागू करना : फसल चक्र, जैविक कृषि, और मृदा संरक्षण तकनीकें मिट्टी की उर्वरता बढ़ाती हैं और रसायनों पर निर्भरता कम करती हैं। सतत कृषि प्रथाओं को अपनाकर ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम किया जा सकता है और मृदा में कार्बन संचयन बढ़ाया जा सकता है।

किसान सहायता प्रणाली को मजबूत करना: बीमा, बुनियादी ढांचे का विकास, समय पर ऋण, क्षमता निर्माण कार्यक्रम, और बाजार जैसी जानकारियों को आमजन तक सुलभ करके किसानों की क्षमता बढ़ाने, जलवायु सहज रणनीतियाँ लागू करने, और प्रतिकूल परिस्थितियों से जुड़े जोखिम को कम करने में सक्षम बनाती है।

नीतिगत बदलाव और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग : खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सरकारों और अनुसंधान संस्थानों को कृषि नवाचारों में निवेश और किसानों का मार्गदर्शन करना चाहिए। वैश्विक तापमान वृद्धि को सीमित करने के लिए नीति स्तर पर बदलाव और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग आवश्यक है। कचरे को कम करना, पानी की बचत करना, और पर्यावरण अनुकूल आदतें अपनाना जैसी व्यक्तिगत क्रियाएं सामूहिक रूप से जलवायु पर नकारात्मक प्रभाव को कम करने में मदद कर सकती हैं।

वैश्विक तापमान वृद्धि के कारण फसल उत्पादन की सुरक्षा के लिए सरकारी पहल

कृषि उत्पादकता सुनिश्चित करने और किसानों को असामान्य मौसम स्थितियों के प्रति सक्षम बनाने के लिए सरकार ने कई उपाय किए हैं। किसानों को असामान्य मौसम स्थितियों से सुरक्षा हेतु, भारत मौसम विभाग के सहयोग से ग्रामीण कृषि मौसम सेवा (पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, २०२५), देश के लगभग ६ करोड़ किसानों को साप्ताहिक दो बार (मंगलवार व शुक्रवार) मौसम आधारित खेती सलाह प्रदान कर रहा है। केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य

योजना द्वारा देश में जलवायु कार्रवाई के लिए एक व्यापक ढांचा तौयार किया है। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन विकसित करके भारतीय कृषि को बदलते जलवायु अनुकूल, अधिक सक्षम और लचीला बनाने के लिए रणनीतियों का विकास और क्रियान्वयन किया गया है। भारत सरकार के कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय के अंतर्गत कार्यरत, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) ने नेशनल इनोवेशन्स इन क्लाइमेट रेसिलिएंट एग्रीकल्चर (NICRA) परियोजना शुरू किया है। यह एक बहु-क्षेत्रीय, बहु-स्थानिक कार्यक्रम है, जिसका मुख्य लक्ष्य जलवायु परिवर्तन और अस्थिरता से निपटना तथा देश में विभिन्न हितधारकों की आवश्यकताओं को पूरा करना है। अनुसंधान, प्रदर्शन और क्षमता निर्माण इसके तीन प्रमुख घटक हैं, साथ ही यह कृषि और जलवायु परिवर्तन संबंधी पहलुओं पर नीति-संबंधी जानकारी भी प्रदान करता है। ICAR की जलवायु प्रतिरोधी कृषि संबंधी प्रमुख उपलब्धियों में निम्नलिखित हैं: कुल मिलाकर १८८८ जलवायु प्रतिरोधी फसल किस्में विकसित की गई हैं, जिनमें ८९१ अनाज, ३१९ तिलहन, ३३८ दलहनी, १०३ चारावाली फसलें, १८२ रेशेदार फसलें, ४५ चीनी फसलें और १० अन्य फसलें शामिल हैं। जलवायु प्रतिरोधी प्रथाओं के लिए सहभागी तकनीक विकसित किया गया, जिसमें १५१ क्लस्टरों में किसानों के जोखिम मूल्यांकन, प्रदर्शन और अनुकूलन तकनीकों में शामिल किया गया। इसके अंतर्गत ४५४ गांव, २.१३ लाख परिवार और २.३६ लाख हेक्टेयर भूमि शामिल हुई। २०१४ से २०२३ के दौरान, ६८ जलवायु प्रतिरोधी तकनीकों को ४५४ गांवों में १५,८५७ किसानों के खेतों पर प्रदर्शित किया गया। ८८ जैव-नियंत्रक एजेंट, ३१ जैव कीटनाशक और ४१ जैव उर्वरक दस्तावेजीकृत और प्रचलित किए गए। ३५ फसलों और फसल प्रणालियों के लिए उच्च जल और पोषक तत्व उपयोग दक्षता प्राप्त करने हेतु टपक फर्टिगेशन मानकीकृत की गईं। साथ ही, ६५० जिलों के लिए जिला कृषि आपातकालीन योजनाएँ विकसित की गईं।

निष्कर्ष

वैश्विक तापमान वृद्धि कृषि और खाद्य उत्पादन के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती है, क्योंकि यह फसल उपज को बढ़ते तापमान, असंगत वर्षा चक्र और चरम मौसम की घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति से प्रभावित करती है। तात्कालिक और प्रभावी हस्तक्षेप के बिना घटती फसल उपज, वैश्विक खाद्य असुरक्षा और आर्थिक अस्थिरता और बढ़ा सकती है। इसलिए, सतत कृषि प्रथाओं, तकनीकी प्रगति और सक्रिय नीतियों को अपनाकर जलवायु परिवर्तन के कृषि पर हानिकारक प्रभाव को कम करने के लिए आवश्यक है। त्वरित उपाय व प्रबंधन द्वारा खाद्य उत्पादन बढ़ाकर आने वाली पीढ़ियों के लिए स्थिर भविष्य सुनिश्चित कर सकते हैं।

संदर्भ

पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय (२०२५, १२ मार्च). *संसद प्रश्न: मौसम और एग्रो एडवाइजरी* [प्रेस विज्ञप्ति- २०२५, १२ मार्च]. भारत सरकार.

अंतर-सरकारी पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (IPCC) (२०२१). https://www.ipcc.ch/

IPCC AR6, IPCC (२०२३). *क्लाइमेट चेंज २०२३: सिन्थेसिस रिपोर्ट.* कार्य समूह I, II और III का छठा मूल्यांकन रिपोर्ट में योगदान [कोर राइटिंग टीम, एच. ली और जे. रोमेरो (संपादक)]. IPCC, जेनेवा, स्विट्ज़रलैंड, पृष्ठ. ३५–११५.

प्राकृतिक खेती एवं सतत कृषि उत्पादन

राजगोपाल वडिवेल, निंटू मंडल, रिंकू डे, के. सम्मि रेड्डी
भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५५

परिचय

प्राकृतिक खेती एक कृषि-पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण है, जिसका उद्देश्य प्राकृतिक सामंजस्य कायम रखते हुए फसल उत्पादन करना है, और साथ ही मृदा स्वास्थ्य, जैव विविधता व किसानों की आजीविका को सुदृढ़ बनाना है। प्राकृतिक खेती रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों पर निर्भर होने के बजाय जैविक प्रक्रियाओं, स्थानीय संसाधनों और पारिस्थितिक संतुलन पर आधारित है। यह लोकप्रिय लेख प्राकृतिक खेती के मूल सिद्धांतों, उनके वैज्ञानिक आधार और सतत खाद्य उत्पादन, जलवायु लचीलापन तथा पर्यावरण संरक्षण में उनकी भूमिका को स्पष्ट करता है। आधुनिक कृषि उत्पादन बढ़ा है, किंतु इसके साथ मृदा उर्वरता में गिरावट, जल प्रदूषण, जैव विविधता की हानि और बढ़ती लागत जैसी समस्याएँ भी आई हैं। इसके समाधान के रूप में प्राकृतिक खेती उभरी है, जो इस विचार पर आधारित है कि *"फसलों को रसायनों से नहीं, बल्कि मृदा-जीवन को पोषित करके उगाया जाए।"* प्राकृतिक खेती कोई पिछड़ेपन की ओर वापसी नहीं है अपितु, यह एक ज्ञान-आधारित प्रणाली है, जो पोषक-चक्रण, जैविक नियमन और मृदा-पौधा-सूक्ष्मजीव अंत:क्रियाओं जैसे पारिस्थितिक सिद्धांतों को अपनाकर, कम लागत के साथ स्थिर उत्पादन प्रदान करती है। जलवायु परिवर्तन और संसाधन-कमी के दौर में इसकी प्रासंगिकता और बढ़ गई है।

प्राकृतिक खेती क्या है?

प्राकृतिक खेती ऐसी उत्पादन प्रणाली है जो रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, शाकनाशी और वृद्धि-नियामकों से परहेज करती है। इसका केंद्र बिंदु मृदा जैविकी का पुनर्जीवन, खेत-स्तरीय जैव विविधता में वृद्धि, स्थानीय व प्राकृतिक स्रोतों का उपयोग, लागत में कमी और अल्पकालिक अधिकतम उपज के बजाय दीर्घकालिक स्थिरता है।

प्राकृतिक खेती के मूल सिद्धांत

१. मृदा एक जीवित तंत्र है

प्राकृतिक खेती का मूल आधार मृदा को एक जीवित पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में समझना है क्योंकि यह मृदा को जीवाणुओं, कवकों, एक्टिनोमाइसीट्स, केंचुओं और अन्य जीवों से भरपूर जीवंत तंत्र मानती है। ये जीव अवशेषों का अपघटन करके पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं और मृदा संरचना सुधारते हैं।

२. पौधे को नहीं, मृदा को भोजन दें

रसायनों से सीधे पोषक देने के बजाय, प्राकृतिक खेती कार्बन-आधारित जैविक पदार्थों से सूक्ष्मजीवों को पोषित करती है। सूक्ष्मजीव प्राकृतिक प्रक्रियाओं से पोषक तत्वों को पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं। परिणामस्वरूप पोषक तत्व फसल की मांग के अनुरूप धीरे-धीरे उपलब्ध होते हैं और हानियाँ कम होती हैं।

३. स्थानीय, खेत-आधारित इनपुट का उपयोग

गोबर, गोमूत्र, फसल अवशेष और वनस्पति-आधारित घोल जैसे स्थानीय संसाधनों से बने इनपुट के प्रयोग को प्राथमिकता दी जाती है, फलस्वरूप बाजार से खरीदी वस्तुओं पर निर्भरता घटती है, लागत कम होती है और किसान आत्मनिर्भर बनते हैं।

४. मृदा कार्बनिक पदार्थ का संवर्धन

कार्बनिक पदार्थ पोषक-धारण, जल-धारण और एग्रीगेशन में सुधार करता है तथा सूक्ष्मजीवों का भोजन है। इसके प्रमुख उपाय है; मल्चिंग, हरी खाद, अवशेष संरक्षण, कम्पोस्टिंग।

५. मृदा आवरण और मल्चिंग

वन-प्रणालियों की तरह मृदा को ढका रखना मृदा कटाव से सुरक्षा, तापमान संतुलन, नमी संरक्षण और खरपतवार नियंत्रण करता है। इसका मूल सिद्धांत यह है कि बिना ढकी मृदा अस्वस्थ मृदा है।

६. जैव विविधता: प्राकृतिक नियामक

फसल चक्र, अंतर-फसल, सीमान्त फसलें (बॉर्डर क्रॉप) और प्राकृतिक पट्टियाँ कीट-रोग व पोषक-चक्रण को संतुलित रखती हैं। विविध प्रणालियाँ अधिक स्थिर और लचीली होती हैं।

७. रासायनिक हस्तक्षेप से परहेज

रासायनिक उर्वरक व कीटनाशक मृदा-जैविकी को बाधित करते हैं। प्राकृतिक खेती इन्हें त्यागकर प्राकृतिक नियमन पर जोर देती है। परिणामस्वरूप मृदा का लचीलापन बढ़ता है, समय के साथ कीट प्रकोप घटता है और पारिस्थितिकी तंत्र मजबूत होता हैं।

८. न्यूनतम मृदा-विक्षोभ

अत्यधिक जुताई मृदा कण-बन्ध तोड़कर सूक्ष्मजीवों को नुकसान पहुँचाती है। आवश्यकता-आधारित/घटित जुताई अपनाई जाती है, जिससे बेहतर जड़-विकास, जल-प्रवेश और कम कटाव होता है।

९. प्राकृतिक कीट-रोग प्रबंधन

कीटों का सम्पूर्ण उन्मूलन नहीं, बल्कि आर्थिक सीमा के नीचे संतुलन बनाए रखना आवश्यक । इसके उपाय वनस्पति-आधारित घोल, सूक्ष्मजीवी फॉर्मुलेशन, लाभकारी कीटों का आवास आदि हैं।

१०. स्थानीय जलवायु और पारिस्थितिकी के अनुरूपता

फसलें व किस्मों का चुनाव और प्रबंधन स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार होने से बाहरी वस्तुओं को थोपने के बजाय पारिस्थितिकी के अनुरूप अनुकूलन होता है।

प्राकृतिक खेती के लाभ

कृषि-लाभ: मृदा संरचना और उर्वरता में सुधार, जल-उपयोग दक्षता और समय के साथ स्थिर उपज से कृषि को लाभ होता है।

आर्थिक लाभ: लागत में कमी, वित्तीय जोखिम घटता है और शुद्ध लाभ में सुधार होता है।

पर्यावरणीय लाभ: प्राकृतिक खेती से प्रदूषण में कमी होती है, जैव विविधता में वृद्धि तथा कार्बन संचयन व जलवायु शमन जैसे लाभ होते हैं।

सामाजिक लाभ: प्राकृतिक खेती से किसानों में स्वायत्तता विकसित होती है, किसान ज्ञान-आधारित कृषि को प्रेरित होते है और ग्रामीण आजीविका मे स्थिरता आती है।

खाद्य सुरक्षा

प्राकृतिक खेती एक मौसम में अधिकतम उपज नहीं, बल्कि वर्षों तक स्थिर उत्पादन सुनिश्चित करके खाद्य सुरक्षा में योगदान देती है। स्वस्थ मृदाएँ सूखा, अत्यधिक वर्षा और गर्मी जैसे झटकों को सहन करने में सक्षम बनाती हैं।

चुनौतियाँ और भविष्य की दिशा

मौजूदा कृषि पद्यति में उपज-संक्रमण, ज्ञान-अंतर और स्थानीय अनुकूलन की आवश्यकता जैसी अनेकों चुनौतियाँ हैं। प्राक्रतिक खेती दीर्घकालिक खेत परीक्षण, मृदा-आधारित प्रदर्शन संकेतक, संक्रमण अवधि में नीतिगत समर्थन तथा किसान प्रशिक्षण आदि नवातारैं द्वारा भविष्य में आने वाली चुनौतियें का मुकाबला किया जा सकता है।

निष्कर्ष

प्राकृतिक खेती का मूल विचार सरल किंतु प्रभावशाली है। कृषि तभी सफल होगी जब वह प्रकृति के साथ तालमेल रख सके। मृदा-जीवों का पुनर्जीवन, जैव संवर्धन और पारिस्थितिक प्रक्रियाएं अपनाकर प्राकृतिक खेती सतत, लचीले और आर्थिक रूप से व्यवहार्य खाद्य उत्पादन का मार्ग प्रस्तुत करती है। भूमि, जल और जलवायु पर बढ़ते दबावों के बीच, प्राकृतिक खेती के सिद्धांत भविष्य की कृषि हेतु मार्गदर्शक साबित होगे।

कृषि पारिस्थितिकी : किसानों की आय, मृदा स्वास्थ्य और स्थायी उत्पादन की दिशा में परिवर्तनकारी पहल

एम. शमीम[१], एन. रवीशंकर[१], एम.ए. अंसारी[१], ए. के. प्रुष्टि[१], राघवेन्द्र के. जे.[१], आर. सिंह[१], नम्रता जैन[२], गोपाल कुमार[३], ए. सिक्का[३], सुनील कुमार[१]

[१] भा.कृ.अ.प.भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदिपुरम, मेरठ, २५०११०, उत्तर प्रदेश

[२] जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश

[३] अंतर्राष्ट्रीय जल प्रबंधन संस्थान, नई दिल्ली

परिचय

भारत की कृषि वर्तमान समय में दोहरी चुनौती का सामना कर रही है, बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण। हरित क्रांति ने जहाँ उत्पादन में क्रांतिकारी वृद्धि की, वहीं रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और जल के अत्यधिक उपयोग ने मृदा की संरचना, जैविक सक्रियता और पारिस्थितिक संतुलन को प्रभावित किया। ऐसे परिदृश्य में कृषि पारिस्थितिकी एक वैकल्पिक और परिवर्तनकारी दृष्टिकोण के रूप में उभरी है, जो पारिस्थितिकी तंत्र और कृषि विज्ञान के सिद्धांतों को एकीकृत करती है। यह दृष्टिकोण स्थानीय संसाधनों के संरक्षण, पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण, जैव विविधता के उपयोग, और सामाजिक सहयोग को प्रोत्साहित करता है। कृषि पारिस्थितिकी केवल जैविक खेती का रूप नहीं, बल्कि एक समग्र पद्धति है जो उत्पादन, पर्यावरण और समाज तीनों में संतुलन स्थापित करती है।

परियोजना की पृष्ठभूमि और अध्ययन क्षेत्र

मार्च २०२३ में वैश्विक कृषि अनुसंधान सहयोग नेटवर्क ने "खाद्य, भूमि और जल प्रणालियों में परिवर्तनकारी कृषि पारिस्थितिकी" नामक विज्ञान-आधारित पहल प्रारंभ की। इसका उद्देश्य छोटे किसानों और ग्रामीण समुदायों के साथ मिलकर कृषि पारिस्थितिकी को व्यवहार में लाना और उसका वैज्ञानिक मूल्यांकन करना था। यह पहल भारत, बर्किना फासो, केन्या, लाओस, पेरू, ट्यूनिशिया और जिम्बाब्वे जैसे देशों में "कृषि पारिस्थितिकी सजीव प्रयोगशालाएँ स्थापित कर ज्ञान-साझाकरण और नवाचार को बढ़ावा देती है। भारत में इस पहल के अंतर्गत मंडला जिला (मध्य प्रदेश) को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चुना गया। यह जिला नारायणगंज विकासखण्ड में स्थित है और कृषि पारिस्थितिक दृष्टि से विविध भूदृपरिदृश्य का प्रतिनिधित्व करता है। मध्य प्रदेश राज्य ३,०८,२५२ वर्ग कि.मी.में फैला है, जिसकी ऊँचाई ९० से १,२०० मीटर तक है और जलवायु मानसून प्रधान है। राज्य का भू-भाग दक्षिण में डेक्कन पठार से लेकर उत्तर में भारतीय गंगा-वार्तीय मैदान तक विस्तृत है। राज्य को ११ कृषि-जलवायु क्षेत्रों में बाँटा गया है जिनमें मंडला जिला "उत्तरी छत्तीसगढ़ पहाड़ी क्षेत्र" के अंतर्गत आता है। इस क्षेत्र में लाल, पीली और काली मिट्टियाँ प्रचलित हैं और औसत वार्षिक वर्षा लगभग १,१७९ मि.मी. है, जो राज्य औसत (१,०३३.८ मि.मी.) से अधिक है। धान, मक्का, अरहर, कोदो, कुटकी, तिलहन और दलहन यहाँ की पारंपरिक फसल प्रणाली का हिस्सा हैं। वार्षिक वर्षा का ९१ % मानसून ऋतु में प्राप्त होता है और शीत ऋतु में हल्की वर्षा रबी फसलों के लिए लाभकारी होती है।

मंडला जिला ८,७७१ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है, जिसकी जनसंख्या लगभग ७.७९ लाख है। जिले में ९ विकासखंड, ६ तहसीलें और १,२१४ ग्राम हैं। कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग ६० प्रतिशत वन भूमि है और शेष क्षेत्र कृषि उपयोग में है। प्रमुख फसलें धान (७०,००० हेक्टेयर), गेहूँ (३५,००० हेक्टेयर) और मक्का (२५,००० हेक्टेयर) हैं। यहाँ पशुपालन, दुग्ध उत्पादन और मत्स्य पालन भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। जिले में सिंचाई अवसंरचना सीमित है और औसतन ६० प्रतिशत कृषि भूमि वर्षा पर निर्भर है। मृदा क्षरण, पोषक तत्व ह्रास और भूमि-खंडन जैसी समस्याएँ उत्पादकता को प्रभावित करती हैं। ऐसे में कृषि पारिस्थितिकी आधारित समेकित प्रणाली इन चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करती है। इन परिस्थितियों में परियोजना के अंतर्गत "फार्म डिजाइन" तकनीक अपनाई गई जिससे किसानों की मौजूदा खेती प्रणालियों का विश्लेषण और समेकित मॉडल का परीक्षण किया जा सके। परिवार के आकार, भूमि क्षेत्र, फसलों की संख्या, पशु इकाइयाँ, फसल एवं पशुधन से आय जैसे कारकों के आधार पर विश्लेषण किया गया। सर्वेक्षण के लिए नारायणगंज ब्लॉक के पाँच गाँव (चैकी, कोंड्रामल्ल, मझगाँव, देवरी और चिरैडोंगरी) चुने गए और प्रत्येक गाँव से १५ किसानों सहित कुल ७५ किसानों का चयन हुआ।इनमें से तीन परिवारों को समेकित कृषि प्रणाली, एक को समेकित जैविक कृषि प्रणाली और एक को प्राकृतिक कृषि प्रणाली के मॉडल के रूप में चुना गया। इसके अतिरिक्त दस सहभागी किसानों को मौजूदा प्रणालियों के परिष्करण हेतु जोड़ा गया ताकि यह पहल सहभागी पद्धति पर आधारित हो सके।

मृदा स्वास्थ्य में सुधार

परियोजना के अंतर्गत मृदा विश्लेषण से पाया गया कि कृषि पारिस्थितिकी आधारित प्रणालियाँ मृदा स्वास्थ्य को उल्लेखनीय रूप से सुधारती हैं। समेकित जैविक कृषि प्रणाली में मृदा कार्बनिक कार्बन ०.७८ प्रतिशत दर्ज किया गया, जो पारंपरिक प्रणाली से २६ प्रतिशत अधिक था। नाइट्रोजन की उपलब्धता २९२ कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर तक बढ़ी, फॉस्फोरस १८ और पोटाश २३२ कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर रहा। मृदा सूक्ष्मजीवों की सक्रियता और केंचुओं की संख्या में वृद्धि दर्ज की, जिससे पोषक तत्व चक्रण और मृदा की जैविक सक्रियता में सुधार हुआ।

जैव विविधता और पारिस्थितिक सेवाएँ

कृषि पारिस्थितिकी अपनाने से खेतों में जैव विविधता में वृद्धि हुई। परागण करने वाले कीट, तितलियाँ, भृंग, पक्षी और मेंढक अधिक संख्या में पाए गए। फसल अवशेष पुनर्चक्रण और वृक्षीय फसलों जैसे अमरूद, पपीता, केला को प्रणाली में शामिल करने से पर्यावरणीय संतुलन सुदृढ़ हुआ। मिश्रित खेती और पशुपालन से खेत पर्यावरणीय झटकों के प्रति अधिक लचीले बने।

जल उत्पादकता और संसाधन दक्षता

मंडला के वर्षा-आधारित क्षेत्रों में प्रभावी जल प्रबंधन फसल उत्पादकता के लिए अत्यंत आवश्यक है। इस उद्देश्य से मल्चिंग, फसल अवशेषों का पुनर्चक्रण तथा मेड़ प्लांटेशन जैसी संरक्षण कृषि तकनीकों को अपनाकर मिट्टी की नमी को संरक्षित किया गया। समेकित कृषि प्रणाली मॉडल–३ में जल उत्पादकता ६.५ रुपये प्रति घन मीटर दर्ज की गई, जो पारंपरिक प्रणाली की तुलना में २८ प्रतिशत अधिक रही। साथ ही, इस मॉडल में नाइट्रोजन उपयोग

दक्षता में २० प्रतिशत तथा फॉस्फोरस उपयोग दक्षता में १८ प्रतिशत की उल्लेखनीय वृद्धि हुई । यह दर्शाता है कि समेकित कृषि प्रणाली वर्षा-आधारित क्षेत्रों में संसाधन उपयोग दक्षता बढ़ाने में प्रभावी है।

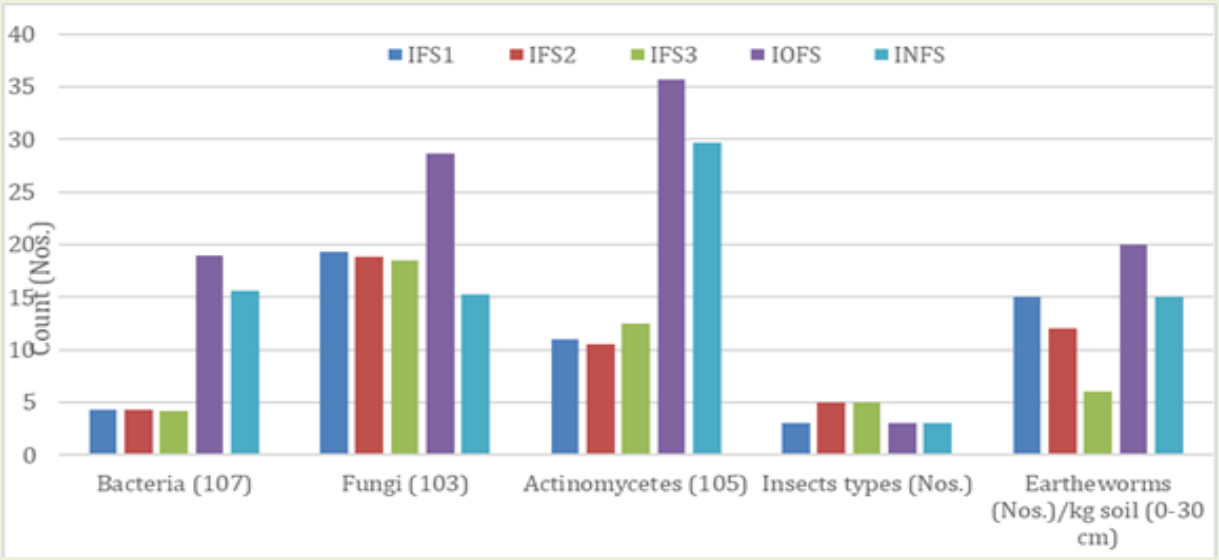

चित्र १. विभिन्न कृषि प्रणालियों में सूक्ष्मजीवों एवं केंचुओं की संख्या का तुलनात्मक विश्लेषण

चित्र २: बत्तख पालन तथा मछली पालन द्वारा जल उत्पादकता बढ़ाने की तकनीक

चित्र ३. संरक्षित ढाँचे, श्रम लागत में कमी और बारहमासी फसलों से आय वृद्धि

आर्थिक विश्लेषण और किसानों की आय में सुधार

सभी कृषि पारिस्थितिक मॉडलों ने लाभदायक परिणाम दिए। समेकित जैविक कृषि प्रणाली में शुद्ध आय ५४,५६३ रुपये प्रति हेक्टेयर और लाभ लागत अनुपात १.८ पाया गया, जबकि समेकित प्रणाली में ५२,४०० रुपये और प्राकृतिक कृषि प्रणाली में ४२,८०० रुपये प्रति हेक्टेयर की आय दर्ज हुई। जैविक विधि अपनाने से लागत २५ से ३० प्रतिशत कम हुई। किसानों ने महसूस किया कि अब उनकी मिट्टी पहले से अधिक उपजाऊ है और आय स्थिर हो रही है।

किसान अनुभव और सामाजिक परिवर्तन

किसानों के अनुसार कृषि पारिस्थितिकी से खेतों की गुणवत्ता और उत्पादन दोनों में सुधार हुआ है। ग्राम गंगोरा के किसान श्री रामलाल पटेल ने बताया कि जीवामृत और गोबर की खाद डालने से मिट्टी हल्की और फसलें सशक्त हुई हैं। महिलाओं ने कम्पोस्ट निर्माण और सब्जी उत्पादन में सक्रिय भूमिका निभाई और अतिरिक्त आय अर्जित की। कृषि विज्ञान केन्द्र, मंडला द्वारा आयोजित प्रशिक्षणों से किसानों की तकनीकी दक्षता में उल्लेखनीय सुधार हुआ।

नीतिगत सुझाव और भविष्य की दिशा

कृषि पारिस्थितिकी आधारित मॉडल वर्षा-आधारित और सीमांत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं। इन मॉडलों को राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन और परंपरागत कृषि विकास योजना से जोड़ा जा सकता है। किसानों को स्थानीय जैविक सामग्री निर्माण प्रशिक्षण, सामुदायिक कम्पोस्ट इकाइयाँ, और डिजिटल सलाह प्लेटफॉर्म उपलब्ध कराए जाने चाहिए। मिशन "लाइफ" और "शून्य-उत्सर्जन कृषि" अभियानों में कृषि पारिस्थितिकी को एकीकृत करना आवश्यक है।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कृषि पारिस्थितिकी न केवल पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ है बल्कि, यह किसानों की आय, आत्मनिर्भरता और जलवायु-अनुकूल खेती के लिए भी प्रभावी है। समेकित जैविक प्रणाली में सर्वाधिक मृदा कार्बन, जल उत्पादकता और लाभ-लागत अनुपात प्राप्त हुआ। विज्ञान और परंपरा का यह संगम भारतीय कृषि को आत्मनिर्भर और भविष्य के अनुकूल दिशा में अग्रसर कर सकता है।

आभार

यह अध्ययन "खाद्य, भूमि और जल प्रणालियों में परिवर्तनकारी कृषि पारिस्थितिकी पहल" परियोजना के अंतर्गत किया गया, जिसे कोलंबो स्थित अंतर्राष्ट्रीय जल प्रबंधन संस्थान द्वारा वित्तीय सहयोग प्राप्त हुआ। यह कार्य भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम तथा जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यायलय, जबलपुर के संयुक्त सहयोग से संपन्न हुआ।

महाराष्ट्र के पशुपालन और मुर्गीपालन क्षेत्रों में विकास प्रवृत्तियाँ और अस्थिरता: विश्लेषण और नीति मार्ग

नव्याश्री पी., नोबीन चंद्र पॉल, ऋतुजा डी. लबडे, प्रज्ञा देशपांडे, रवी कुमार कुरे, धनंजय डी. नांगरे, संजीवकुमार कोचेवाड

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

अध्ययन में १९८२ से २०१९ तक महाराष्ट्र पशुधन जनगणना के आंकड़ों का उपयोग करके महाराष्ट्र के पशुधन और मुर्गीपालन क्षेत्रों में विकास के रुझान, अस्थिरता और प्रतिशत परिवर्तन की जांच की गई है। मुर्गीपालन क्षेत्र ने १७.९४% की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (CAGR) के साथ सबसे अधिक वृद्धि हासिल की, जबकि मवेशियों की आबादी में १.७८% की गिरावट आई, जो नस्ल के चयन, बाजार पहुंच, बुनियादी ढांचे और रोग प्रबंधन में चुनौतियों को दर्शाती है। मराठवाड़ा और विदर्भ जैसे क्षेत्रों में भिन्नताएं, जल की कमी और चारे की उपलब्धता से प्रेरित असमानताओं को उजागर करती हैं, जो महाराष्ट्र के विजन २०२५ के अंतर्गत लचीले ग्रामीण विकास और सतत वृद्धि को समर्थन देने के लिए लक्षित नीतियों की आवश्यकता को रेखांकित करती हैं।

कृषि और संबद्ध क्षेत्रों की महाराष्ट्र में महत्वपूर्ण भूमिका है, इन क्षेत्रों का सकल राज्य मूल्य वर्धन (GSVA) में १२.१% का योगदान है, और ये लाखों ग्रामीण परिवारों और छोटे किसानों को आजीविका प्रदान करते है, जो इसके सामाजिक और आर्थिक महत्व को रेखांकित करता है (महाराष्ट्र आर्थिक सर्वेक्षण, २०२२-२३)। पशुधन की संख्या के मामले में राज्य सातवें स्थान पर है, जहां लगभग ३.३ करोड़ पशुधन हैं, तथा मुर्गीपालन में पांचवें स्थान पर है, जहां लगभग ७.४३ करोड़ पक्षी हैं (पशुपालन विभाग, महाराष्ट्र सरकार)। विगत कुछ वर्षों में, पशुधन और मुर्गीपालन दोनों क्षेत्रों में महाराष्ट्र पर्याप्त वृद्धि हुई है, और यह वृद्धि पशु प्रोटीन की बढ़ती मांग, पशु चिकित्सा सेवाओं में प्रगति और बेहतर पशुपालन पद्यति जैसे कारकों से प्रेरित है। राज्य १२.६% हिस्सेदारी के साथ मांस का सबसे बड़ा उत्पादक है, जबकि मुर्गीपालन मांस उत्पादन में पिछले तीन दशकों में १८% की प्रभावशाली वृद्धि दर देखी गई है, जो इस क्षेत्र की बढ़ती प्रगति को रेखांकित करता है। इन सकारात्मक आंकड़ो के बावजूद, इस क्षेत्र में अनेक चुनौतियों है, जैसे बाजार की अस्थिरता, बीमारियों का प्रकोप और जलवायु संबंधी संवेदनशीलता। ये चुनौतियां पशुओं की उत्पादकता और किसानो के लाभ को विशिष्ट रूप से प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न पशुधन श्रेणियों जैसे कि पशु, भैंस और मुर्गी की वृद्धि दर में क्षेत्रीय असमानताएं, पूरे क्षेत्र में संतुलित और सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए वैज्ञानिक एवं नीतिगत हस्तक्षेप की आवश्यकता हैं।

इस लेख का उद्देश्य महाराष्ट्र के पशुधन और मुर्गीपालन क्षेत्रों में विकास की प्रवर्तियाँ, अस्थिरता और प्रतिशत परिवर्तनों का विश्लेषण करना है, जिसमें १९८२ से २०१९ तक की महाराष्ट्र पशुधन गणना के पंचवर्षीय आंकड़ों का उपयोग किया गया है। विविध विकास पथों का अन्वेषण और अंतर्निहित चुनौतियों की पहचान करके, यह अध्ययन

नीति निर्माताओं के लिए मूल्यवान अंतर्दृष्टि और सिफारिशें प्रदान करने का प्रयास है, जो महाराष्ट्र सरकार के विज़न २०२५ की पहल के अनुरूप है, और आर्थिक लचीलेपन पर केंद्रित है। विश्लेषण में पिछले दशकों में पशुधन की आबादी, उत्पादन प्रतिमान और क्षेत्रीय गतिशीलता में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। ये अंतर्दृष्टियाँ भविष्य की वृद्धि, उत्पादकता, और पशुधन एवं मुर्गीपालन पर निर्भर ग्रामीण किसानों का हित सुनिश्चित करेंगी।

विकास और अस्थिरता की प्रवर्तियाँ

महाराष्ट्र पशुधन गणना के आंकड़ों के आधार पर महाराष्ट्र के पशुधन और मुर्गीपालन क्षेत्रों में चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (CAGR) का विश्लेषण, विभिन्न विकास प्रवृत्तियों को दर्शाता है जो अवसरों और चुनौतियों दोनों को उजागर करते हैं (चित्र १)। मुर्गीपालन क्षेत्र में १७.९४% की CAGR के साथ सबसे अधिक वृद्धि हुई, जो मुर्गीपालन उत्पादों की बढ़ती मांग, उन्नत मुर्गीपालन प्रथाओं और आधुनिक मुर्गीपालन इकाइयों के कारण हुई। हालांकि, राज्य में कुल मुर्गीपालन में ४.४९% की कमी आई है, जबकि पिछली गणना की तुलना में वाणिज्यिक मुर्गीपालन में १३.४४% की गिरावट आई है। भैंस और बकरी के क्षेत्रों में क्रमशः ४.३९७% और ४.०७४% की मध्यम वार्षिक वृद्धि दर्ज की, जो विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में दूध और मांस की मांग में स्थिर वृद्धि को दर्शाता है । इस वृद्धि का श्रेय आंशिक रूप से राष्ट्रीय पशुधन मिशन को दिया जा सकता है, जिसने अग्रिम संपर्कों के निर्माण के माध्यम से असंगठित क्षेत्र की उपज को संगठित बाजारों से जोड़ने में मदद की है। इसके विपरीत, भेड़ और मवेशी सहित समग्र पशुधन क्षेत्र में न्यूनतम से नकारात्मक वृद्धि दर्ज की गई। कुल पशुधन वार्षिक वृद्धि दर केवल ०.८४८% थी, जिसमें भेड़ों में ०.०४४% की मामूली वृद्धि दर देखी गई तथा मवेशी में १.७८६% की गिरावट देखी गई। कुल पशु जनसंख्या १३९.९२ लाख है, जो पिछले जनगणना की तुलना में ९.६३% की कमी को दर्शाती है। यह इन क्षेत्रों की चुनौतियों को दर्शाता है, जैसे कि अपर्याप्त बुनियादी ढांचा, कृषि यांत्रिकीकरण और राज्य में बैल दौड़ पर प्रतिबंध। हालाँकि, कुल आबादी में विदेशी संकर मवेशियों का अनुपात काफी बढ़ गया है, जो २०१२ में २३.५९% से बढ़कर २०१९ में ३२.९३% हो गया, जो विदेशी नस्लों के प्रति बढ़ती प्राथमिकता को दर्शाता है।

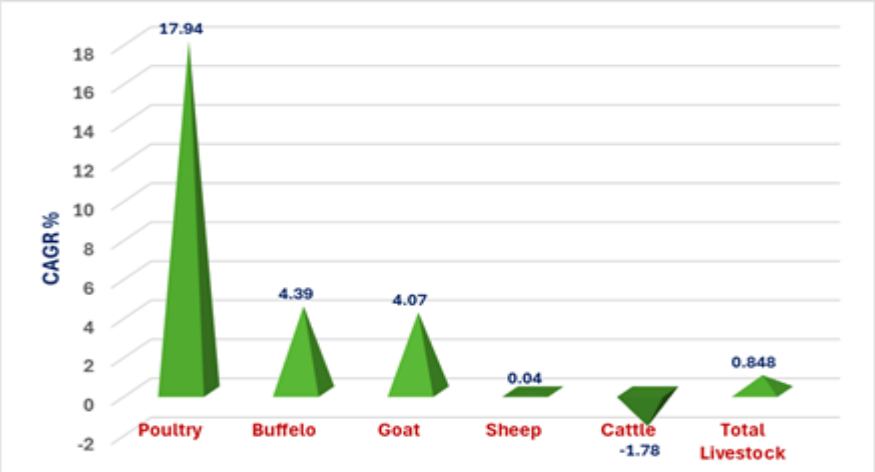

चित्र १. महाराष्ट्र में १९८२ से २०१९ तक विभिन्न पशुधन और मुर्गीपालन क्षेत्रों की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (CAGR)

महाराष्ट्र में कुल पशुधन क्षेत्र के लिए चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (CAGR) और कड्डी-डेला वले सूचकांक (CDVI) का विश्लेषण विकास और स्थिरता का मिश्रित चित्र प्रस्तुत करता है जैसा कि चित्र २ में दर्शाया गया है। जबकि क्षेत्र ने ०.८४७% की मध्यम CAGR प्रदर्शित की, जो स्थिर वृद्धि को दर्शाती है, इसने ८.०७% के उच्च CDVI द्वारा दर्शाए गए महत्वपूर्ण अस्थिरता का भी अनुभव किया। इससे पता चलता है कि यह क्षेत्र उतार-चढ़ाव के प्रति संवेदनशील है। क्षेत्रीय विकास में यह अंतर उच्च विकास वाले क्षेत्रों, जैसे कि मुर्गीपालन और भैंस, का समर्थन करने वाली नीतियों की तत्काल आवश्यकता को रेखांकित करता है, जबकि मवेशी और भेड़ पालन के लिए लचीलापन उपायों को लागू किया जा रहा है। मराठवाड़ा और विदर्भ जैसे शुष्क क्षेत्रों में जल की कमी, बार-बार सूखा और सीमित चारा संसाधन जैसे कारकों ने मवेशियों और भेड़ों की जनसंख्या वृद्धि में बाधा उत्पन्न की है। महाराष्ट्र सरकार, राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड और मदर डेयरी फ्रूट एंड वेजिटेबल प्राइवेट लिमिटेड के सहयोग से, विदर्भ और मराठवाड़ा के ११ जिलों में दूध उत्पादन बढ़ाने के लिए एक विशेष पहल शुरू की है। यह परियोजना चारा विकास को बढ़ाने, उच्च गुणवत्ता वाले पशु आहार उपलब्ध कराने, पशु आहार अनुपूरकों (खनिज मिश्रण) की आपूर्ति करने, तथा घर-घर कृत्रिम गर्भाधान सेवाओं सहित पशु चिकित्सा सेवाएं प्रदान करने पर केंद्रित है। २०२१-२२ में, राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड ने १८८५ दूध संग्रह केंद्रों के माध्यम से ६१९ लाख लीटर दूध (प्रतिदिन औसतन २,४५,१३२ लीटर) एकत्र किया, जिसमें २७,११७ ग्रामीणों को शामिल किया गया।

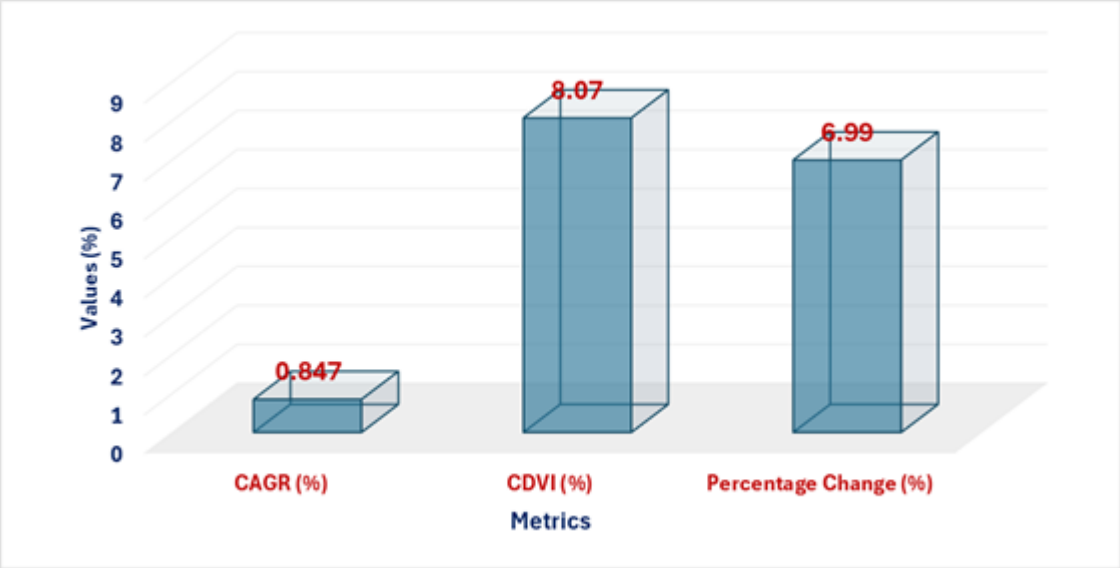

चित्र २. चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर, कड्डी-डेला वले सूचकांक (CDVI) और १९८२ से २०१९ तक महाराष्ट्र के समग्र पशुधन क्षेत्र में प्रतिशत परिवर्तन (%) निष्कर्ष और भविष्य की दिशा

महाराष्ट्र के पशुपालन और मुर्गीपालन क्षेत्र में विकास प्रवृत्तियों और चुनौतियों में असमानताओं को संबोधित करने के लिए, नीतिगत हस्तक्षेप महत्वपूर्ण हैं। मुर्गीपालन क्षेत्र को, अपनी मजबूत वृद्धि के साथ, बुनियादी ढांचे के विकास, बाजार पहुंच और तकनीकी सहायता की आवश्यकता है, यह आय का स्थायी और सतत स्रोत है। भैंस, मवेशी और बकरी क्षेत्रों के लिए नीतियाँ, चारा और चारे में सुधार, कौशल विकास, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विस्तार गतिविधियों को बढ़ावा देने और अंततः रोजगार सृजन और उद्यमिता

विकास के लिए मूल्यवर्धित उत्पादों को विकसित करने पर ध्यान केंद्रित होना चाहिए (कुमार इत्यादि., २०२१)। कुल मिलाकर पशुधन क्षेत्र को प्रति पशु उत्पादकता बढ़ाने के लिए अनुसंधान और विकास तथा उन्नत तकनीकों में निवेश की आवश्यकता है। चारा प्रबंधन, आनुवंशिक सुधार और जलवायु अनुकूलन रणनीतियों पर ध्यान केंद्रित करने वाले लक्षित कार्यक्रम महाराष्ट्र के पशुधन उद्योग की उत्पादकता और लाभप्रदता को बढ़ा सकते हैं। क्षेत्र की स्थिरता को बढ़ाने के लिए, नीतियों को जोखिम न्यूनीकरण रणनीतियों जैसे बीमा और विविधीकरण, बाजार पहुंच और बुनियादी ढांचे में सुधार पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। राज्य पशुपालन विभागों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आवश्यक दवाएं और टीके पशुपालकों के लिए उपलब्ध हों ताकि उपचार लागत को कम किया जा सके और पशु स्वास्थ्य और उत्पादकता का सुनिश्चित किया जा सके (दास, २०२२)। इसके अतिरिक्त, महिलाओं को सशक्त बनाना, और डिजिटल प्रौद्योगिकियों का लाभ उठाना इस क्षेत्र की लचीलापन को ओर बढ़ा सकता है। इन नीतियों को लागू करके, महाराष्ट्र समृद्ध और सतत पशुपालन और मुर्गी पालन क्षेत्र को बढ़ावा दे सकता है, जो खाद्य सुरक्षा, ग्रामीण आजीविका और राज्य के आर्थिक विकास में योगदान करेगा।

संदर्भ

पशुपालन सांख्यिकी पुस्तिका (२०२०). महाराष्ट्र सरकार।

दास, एस. के. (२०२२). महाराष्ट्र में पशुपालन की स्थिति। *एक्टा साइंटिफिक वेटरनरी साइंसेज*, ४(१), २६-३३।

अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी निदेशालय (२०२३). महाराष्ट्र सरकार। महाराष्ट्र का आर्थिक सर्वेक्षण।

कुमार, के., गर्ग, एल., सिंह, आर. के., और चंदर, एम. (२०२१). भारतीय पशुधन क्षेत्र में चुनौतियाँ और सुझाए गए हस्तक्षेप: एक अवलोकन। *जर्नल ऑफ़ एंटोमोलोजी एंड जूलॉजी स्टडीज*, ९(१), ४२२-४२८।

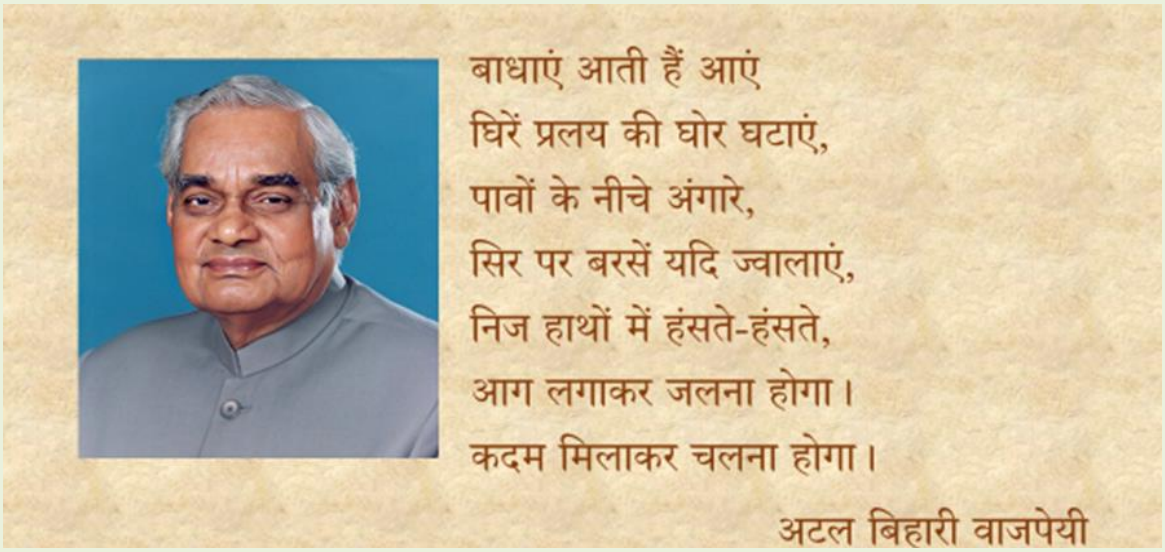

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में पाम की खेती का महत्व

नव्याश्री पी., नोबिन चंद्र पॉल, जी. एम. हिरेमथ, राजेश पवार, प्रथमेश सकाटे

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

भारत में खाद्य तेल की खपत विश्व में सबसे अधिक है, जिसमें कुल खपत का लगभग ४०% पाम तेल है। बढ़ती मांग के बावजूद, देश अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आयात पर बहुत अधिक निर्भर है। इस निर्भरता को कम करने के लिए, भारत सरकार ने विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ अनुकूल जलवायु परिस्थितियाँ हैं, पाम की घरेलू खेती को बढ़ावा देने पर जोर दिया है। भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र, जो अपनी उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय जलवायु के लिए जाना जाता है, ताड़ की खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त है। खाद्य तेलों पर राष्ट्रीय मिशन – ऑयल पाम (NMEO-OP) के तहत पूर्वोत्तर क्षेत्र पर विशेष ध्यान देते हुए, सरकार २०२५-२६ तक कच्चे पाम तेल के उत्पादन को बढ़ाने के लिए कार्य कर रही है। इसके अंतर्गत पाम की खेती को ८.४ लाख हेक्टेयर तक बढ़ाकर लगभग ११.२० लाख टन कच्चे पाम तेल उत्पादन हासिल करने का लक्ष्य है (प्रेस सूचना कार्यालय, २०२४)।

पश्चिमी अफ्रीकी देशों में पाम तेल को लंबे समय से मान्यता प्राप्त थी। घरेलू तेल उत्पादन बढ़ाने के प्रयासों के रूप में पाम तेल को १८८६ में इंडिया नेशनल रॉयल बॉटनिकल गार्डन, कोलकाता में प्रस्तुत किया गया था। भारत प्रति वर्ष लगभग ९ मिलियन टन पाम तेल का आयात करता है, जिसकी लागत लगभग ४०,००० करोड़ रुपये है, जो कुल खाद्य तेल आयात का लगभग ५६% है (खाद्य तेलों पर राष्ट्रीय मिशन - पाम तेल, २०२२)। उच्च आयात निर्भरता देश में खाद्य तेल की बढ़ती मांग को पूरा करने में पाम तेल पर निर्भरता को उजागर करती है । पाम तेल की बढ़ती खपत लागत-प्रभावशीलता और व्यापक वनस्पति तेल बाजार में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाती है। वर्तमान में आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक जैसे राज्यों में पाम तेल की खेती की जा रही है, लेकिन पूर्वोत्तर क्षेत्र कृषि उत्पादन में अपेक्षाकृत अविकसित है। इस क्षेत्र की उच्च वर्षा, गर्म तापमान और विस्तृत भूमि उपलब्धता पाम तेल के बागानों के विस्तार के लिए एक अनूठा अवसर प्रस्तुत करती है। रोजगार सृजन, किसानों की आय में वृद्धि और ग्रामीण विकास जैसे संभावित सामाजिक-आर्थिक लाभ पाम की खेती को पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए एक महत्वपूर्ण व लाभकारी फसल बनाते हैं।

पर्यावरण उपयुक्तता

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में विविध कृषि-जलवायु परिस्थितियाँ मौजूद हैं, जो अनेक फसलों की खेती के लिए उपयुक्त हैं। इस क्षेत्र में औसत वार्षिक वर्षा लगभग २००० मि.मी. होती है, जो जल और पोषक तत्वों की अधिक आवश्यकता वाली पाम तेल जैसी संसाधन-गहन फसल के लिए आदर्श मानी जाती है। यहाँ का तापमान भी अनुकूल है, क्योंकि ऑयल पाम २५°C से ३०°C के बीच तापमान वाले क्षेत्रों में सर्वोत्तम रूप से वृद्धि करता है। इसके अतिरिक्त, पूर्वोत्तर की मृदा संरचना मुख्य रूप से दोमट, उपजाऊ और जैविक पदार्थों से समृद्ध है, जो पाम की खेती

के लिए अनुकूल है, बशर्ते कि जल निकासी प्रणाली का वैज्ञानिक और कुशल प्रबंधन सुनिश्चित किया जाए। उचित कृषि पद्धतियों और क्षेत्र-विशिष्ट प्रबंधन रणनीतियों के क्रियान्वयन से, पारिस्थितिक संतुलन को क्षति पहुँचाए बिना पूर्वोत्तर क्षेत्र में ऑयल पाम की खेती को सफलतापूर्वक स्थापित किया जा सकता है। हालाँकि, क्षेत्र के कुछ हिस्सों में अत्यधिक वर्षा जैसी जलवायु-आधारित चुनौतियाँ रोपण एवं बागान प्रबंधन तकनीकों में विशेष समायोजन की मांग करती हैं। ऐसे में कुशल जल निकासी, रोग-नियंत्रण आधारित निगरानी, और वर्षा-अनुकूल वृक्षारोपण प्रबंधन मॉडल अपनाना अनिवार्य हो जाता है, ताकि रोगों, जड़ क्षति और रोपण सम्बंधित विफलताओं को रोका जा सके।

आर्थिक क्षमता

पूर्वोत्तर क्षेत्र में पाम की खेती से महत्वपूर्ण आर्थिक लाभ प्राप्त हो सकते हैं। यह क्षेत्र मुख्य रूप से कृषि-प्रधान है। पाम की खेती किसानों को फसली विविधता का अवसर प्रदान करती है, जिससे उनकी आय में वृद्धि हो सकती है। पाम की खेती अन्य समशीतोष्ण और उष्णकटिबंधीय तिलहनी फसलों की तुलना में प्रति हेक्टेयर लगभग ३ से ८ गुना अधिक उत्पादन क्षमता रखती है। पाम तेल उद्योग से प्राप्त उप-उत्पाद जैसे पाम कर्नेल केक और पाम बायोमास जैव-ईंधन तथा पशु-आहार जैसे मूल्य-वर्धित उत्पादों के लिए उपयोगी हैं। भारत में पाम तेल की मांग आने वाले वर्षों में जनसंख्या वृद्धि, खाद्य प्रसंस्करण और सौंदर्य प्रसाधन की बढ़ती जरूरतों के कारण और अधिक बढ़ने की संभावना है (भारत सरकार, २०२१)। इस परिदृश्य में, पूर्वोत्तर घरेलू पाम उत्पादन को मजबूत करने, स्थानीय अर्थव्यवस्था को गति देने और ग्रामीण समुदायों के जीवन-स्तर में सुधार लाने में एक प्रमुख क्षेत्र बन सकता है।

पाम की खेती में चुनौतियाँ

व्यापक संभावनाओं के बावजूद, कई प्रमुख चुनौतियाँ पूर्वोत्तर क्षेत्र में पाम की खेती को बड़े पैमाने पर बाधक हैं। महत्वपूर्ण समस्याएं जैसे सिंचाई सुविधाएँ, ग्रामीण सड़क नेटवर्क और असंगठित विपणन तंत्र आदि से ताज़ा फलों को प्रसंस्करण इकाइयों तक समय पर पहुँचाना कठिन हो जाता है। इन क्षेत्रों में प्रसंस्करण मिलों की स्थापना फसलोत्तर नुकसान को कम करने और मूल्य संवर्धन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है, किंतु सार्वजनिक एवं निजी दोनों क्षेत्रों में मिल स्थापना हेतु आवश्यक उच्च पूंजी निवेश एक गंभीर वित्तीय चुनौती बनी हुई है। पूर्वोत्तर के अधिकांश वन क्षेत्र सामुदायिक (सांप्रदायिक) भूमि प्रबंधन प्रणाली के अंतर्गत आते हैं। ऐसे क्षेत्रों को पाम बागानों में परिवर्तित करने से भूमि स्वामित्व कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों तक सीमित होने का जोखिम बढ़ सकता है, जिससे सामाजिक-आर्थिक असमानता गहराने और स्थानीय आजीविका सुरक्षा कमजोर होने की आशंका उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त, जल संसाधन प्रबंधन भी एक प्रमुख चुनौती है, क्योंकि पाम एक जल-गहन फसल है। वर्षा में अनियमितता, जल संरक्षण संरचनाओं की कमी और अपर्याप्त जल प्रबंधन प्रणालियाँ शुष्क मौसम के दौरान सूखा की परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकती हैं, जिससे रोपण की सफलता और उत्पादकता प्रभावित हो सकती है।

नीति समर्थन और भविष्य की संभावनाएं

पूर्वोत्तर क्षेत्र में पाम की खेती को बढ़ावा देने में सरकारी नीतियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। खाद्य तेलों पर राष्ट्रीय मिशन – ऑयल पाम, २०२१ में शुरू किया गया, जिसका उद्देश्य पाम सहित तिलहन के घरेलू उत्पादन को

बढ़ावा देना है। मिशन ने पूर्वोत्तर को प्रमुख क्षेत्र के रूप में पहचाना है, जो वित्तीय प्रोत्साहन, भूमि विकास के लिए सब्सिडी और किसानों के लिए तकनीकी सहायता प्रदान करता है। साथ ही, इस मिशन ने पाम की खेती को बढ़ावा देने के लिए ११,०४० करोड़ रुपये के कुल राष्ट्रीय बजट में से ५,८७० करोड़ रुपये आवंटित किए हैं, जिसमें केंद्र सरकार द्वारा ९० प्रतिशत वित्त पोषण और १० नई तेल मिलों की स्थापना की योजना है, जिनमें से पहली का उद्घाटन अरुणाचल प्रदेश में किया जा चुका है (पीआईबी, २०२४)। अनुबंध खेती को बढ़ावा देना, सार्वजनिक-निजी भागीदारी के साथ निजी निवेश को प्रोत्साहित करना, मिलों और प्रसंस्करण इकाइयों को स्थापित करने में मदद कर सकता है। दूर के प्रसंस्करण केंद्रों पर निर्भरता कम होने से किसानों का लाभ बढ़ सकता है। इसके अलावा, नीति नियोजन में पर्यावरणीय स्थिरता पर मुख्य ध्यान दिया जाना चाहिए। तब पाम की खेती, लाभदायक होते हुए भी, वनों की कटाई और पर्यावरणीय क्षरण का कारण बन सकती है। उत्तम भूमि उपयोग प्रथाओं जैसे कृषि वानिकी प्रणालियों को बढ़ावा और जैव विविधता का संरक्षण पाम की खेती और पर्यावरण संतुलन दोनों में सकारात्मक योगदान दे सकते हैं।

साराँश

पूर्वोत्तर भारत में पाम की खेती की अपार संभावनाएँ हैं। यह फसल ग्रामीण रोजगार सृजन और क्षेत्रीय विकास को गति देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। क्षेत्र की अनुकूल उष्णकटिबंधीय–उपोष्णकटिबंधीय जलवायु एवं प्रचुर भूमि उपलब्धता पूर्वोत्तर को पाम खेती हेतु एक आदर्श भौगोलिक क्षेत्र बनाती है। हालाँकि, इसकी सफलता के लिए कृषि अवसंरचना, जल प्रबंधन और बाजार से जुड़ी प्रमुख बाधाओं का समयबद्ध और वैज्ञानिक समाधान आवश्यक है। इस संदर्भ में, सड़क–परिवहन नेटवर्क, स्थानीय प्रसंस्करण मिलों की स्थापना, वर्षा जल संचयन, जल संरक्षण संरचनाओं का विकास और कुशल सिंचाई प्रणालियों को बढ़ावा देना अनिवार्य हैं, ताकि इस क्षेत्र में पाम उत्पादन की दीर्घकालिक स्थिरता और पारिस्थितिक संतुलन सुनिश्चित किया जा सके। साथ ही, नीतिगत समर्थन, सार्वजनिक–निजी भागीदारी (PPP) आधारित मॉडल और टिकाऊ कृषि पद्धतियों का क्रियान्वयन इस फसल के लिए निर्णायक सिद्ध होंगे। इसका लाभ उठाकर, भारत पाम तेल आयात पर अपनी निर्भरता कम करने, पूर्वोत्तर के कृषि–आधारित अर्थतंत्र को सुदृढ़ करने और समावेशी ग्रामीण समृद्धि को बढ़ावा देने में सफल हो सकता है। कुल मिलाकर, पूर्वोत्तर में ऑयल पाम खेती का भविष्य आशाजनक है, बशर्ते कि मौजूदा चुनौतियों को दूर कर सतत और न्यायसंगत विकास के लिए एक मजबूत, क्षेत्र-विशिष्ट और पर्यावरण-संवेदनशील कार्य प्रणाली विकसित की जाए।

संदर्भ

भारत सरकार। (२०२१). खाद्य तेलों पर राष्ट्रीय मिशन - पाम ऑयल कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय।

खाद्य तेलों पर राष्ट्रीय मिशन-पाम तेल (२०२२). कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार। ४ नवंबर, २०२४ को https://nmeo.dac.gov.in/ से लिया गया।

प्रेस सूचना कार्यालय। (२०२४, १४ मार्च)। खाद्य तेल की आत्मनिर्भरता का दृष्टिकोण पूर्वोत्तर में जड़ें जमा रहा है; राष्ट्रीय खाद्य तेल मिशन के तहत पाम ऑयल प्रोसेसिंग मिल का उद्घाटन।

अजैविक तनाव प्रबंधन में ह्यूमिक पदार्थों की भूमिका और भविष्य की संभावनाएँ

निंटू मंडल, राजगोपाल वडिवेल, महेश गुप्ता, सुधीर कुमार मिश्र, रिंकू डे, के. सम्मि रेड्डी
भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

ह्यूमिक पदार्थ (HS) मृदा कार्बनिक पदार्थ (SOM) के प्रमुख कार्बनिक घटक हैं। ये पादप और सूक्ष्मजीवी अवशेषों के अपघटन और रूपांतरण से बनते हैं। ह्यूमिक पदार्थ अत्यधिक स्थिर, जटिल और विषमांगी पदार्थ हैं जो मृदा उर्वरता, पोषक चक्रण और पादप वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।ह्यूमिक पदार्थ मृदा कार्बनिक पदार्थ का एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक घटक है, जो ह्यूमिक अम्ल, फुल्विक अम्ल तथा ह्यूमिन से मिलकर बना होता है। यह मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक विशेषताओं में सुधार करने में सहायक होता है। ह्यूमिक पदार्थ पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने तथा जड़ों की वृद्धि को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। १९८० के दशक से इसके विभिन्न फसलों की वृद्धि, उपज एवं गुणवत्ता पर प्रभावों का व्यापक अध्ययन किया जा रहा है। शोध परिणामों से यह स्पष्ट हुआ है कि ह्यूमिक पदार्थ का संतुलित उपयोग फसल उत्पादकता और मृदा स्वास्थ्य दोनों के लिए लाभकारी है। इसके तीन प्रमुख घटक हैं-

ह्यूमिक अम्ल (HA): अम्लीय विलयनों में अघुलनशील, लेकिन क्षारीय विलयनों में घुलनशील, उच्च आणविक भार और सुगंधित गुण। मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता और धनायन विनिमय क्षमता (CEC) में सुधार करता है।

फुल्विक अम्ल (FA): अम्लीय और क्षारीय दोनों विलयनों में घुलनशील, कम आणविक भार और अधिक ऑक्सीजन युक्त, प्रबल कीलेटिंग कारक; पोषक तत्वों (जैसे, Fe, Zn, Mn) की उपलब्धता बढ़ाता है।

ह्यूमिन: यह अम्लीय और क्षारीय दोनों विलयनों में अघुलनशील, चिकनी मिट्टी के खनिजों और मृदा समुच्चयों से दृढ़ता से बंधा हुआ, मृदा में कार्बन का दीर्घकालिक भंडार है।

पौधों में अजैविक तनाव निवारण में ह्यूमिक पदार्थों की भूमिका

तनाव सहनशीलता और संसाधन उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए एक उभरता हुआ, स्थायी तरीका जैव-उत्तेजक पदार्थों, विशेष रूप से ह्यूमिक पदार्थों (HS) का उपयोग है, क्योंकि पौधों की वृद्धि, गुणवत्ता और अजैविक तनाव सहनशीलता पर इनके सकारात्मक प्रभाव होते हैं । पादप आकारिकी और शरीरक्रिया विज्ञान पर ह्यूमिक पदार्थों का प्रभाव इसका रासायनिक संरचना, जलविरोधिता और संरूपण संरचना पर निर्भर करता है । ह्यूमिक पदार्थों के तरल रूप, आमतौर पर ह्यूमिक और फुल्विक अम्ल, अक्सर पत्तियों और जड़ों पर छिड़काव के रूप में प्रयोग किए जाते हैं और इनमें ऑक्सिन जैसी क्रियाशीलता देखी गई है । ह्यूमिक पदार्थों के तरल रूपों के विपरीत, ह्यूमिन युक्त ह्यूमिक पदार्थोंके ठोस रूपों का प्रयोग पूरक मृदा सुधार के रूप में किया जाता है। पौधों की वृद्धि और अजैविक तनाव

सहनशीलता पर इनका प्रभाव तरल रूपों की तुलना में धीमा होता है, लेकिन ये मृदा में अधिक समय तक बने रहते हैं और जल धारण क्षमता, पोषक तत्व प्रतिधारण और पोषक तत्व उपयोग दक्षता में सुधार कर सकते हैं, जिससे ये दीर्घकालिक, टिकाऊ निवेश बन जाते हैं।

सूखा निवारण पर ह्यूमिक एसिड का प्रभाव

ह्यूमिक अम्ल उपचारों के लिए, पोटेशियम-ह्यूमेट (७०% ह्यूमिक अम्ल, १०% K_2O) के रूप में घुलनशील ह्यूमिक अम्ल जल की कमी वाले उपचार की पहली तीन सिंचाईयों के समय सिंचाई जल के साथ तीन बार डाला गया। अधिकतम ह्यूमिक अम्ल दर के प्रयोग पर, जल-तनावग्रस्त पौधों का जल उपयोग दक्षता (WUE) मान पहले और दूसरे मौसम में क्रमशः ९.३२ और ९.३६ किग्रा/ हेक्टेयर था। ९.६ किग्रा/हेक्टेयर की ह्यूमिक अम्ल मात्रा ने सर्वाधिक प्रभावी परिणाम दिए, जो शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में ब्रोकली की उपज और उत्पादन-स्थिरता में सुधार की महत्त्वपूर्ण संभावना दर्शाते हैं (इब्राहिम इत्यादि, २०२४)। ह्यूमिक एसिड के सकारात्मक प्रभाव मृदा गुणों जैसे वातन, एकीकरण, जल धारण क्षमता, आयन उपलब्धता और परिवहन में सुधार से संबंधित हैं, जिससे पोषक तत्वों और जल का अधिक प्रभावी अवशोषण होता है, और जल-तनाव की स्थिति में भी प्रकाश संश्लेषण का अधिक संचय होता है। इसके अलावा, ह्यूमिक एसिड पौधों में सुरक्षात्मक एंटीऑक्सीडेंट प्रतिक्रियाओं को उत्तेजित कर सकता है जिससे प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (ROS) का उत्पादन रोका जा सकता है और कोशिकाओं को ऑक्सीडेटिव क्षति से बचाया जा सकता है। इसके अलावा, ह्यूमिक एसिड वृद्धि नियामकों को बढ़ाकर कोशिका विभाजन और लंबाई को बढ़ावा देता है, जिसका पौधों की वृद्धि की उत्तेजना पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्रति हेक्टेयर ४५ किग्रा की दर से ह्यूमिक अम्ल के प्रयोग से मृदा में वृहत्-समुच्चयों के अनुपात में सुधार हुआ और मृदा जल की मात्रा में ५.०% की वृद्धि हुई। मृदा में फास्फोरस, पोटेशियम, लौह और मैग्नीशियम की उपलब्धता में सुधार हुआ, और मक्का में रूबिस्को और एटीपी सिंथेज़ की सक्रियता, इंडोल-३-एसिटिक अम्ल (IAA) की मात्रा, और परासरणी रूप से सक्रिय विलेय (अर्थात, घुलनशील शर्करा, बीटाइन और प्रोलाइन) की सांद्रता में वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त, मक्के की पत्तियों में प्राथमिक उपापचयी प्रक्रियाओं, विशेष रूप से प्रकाश संश्लेषण, कार्बन स्थिरीकरण, और हार्मोन एवं परासरणी उपापचय में शामिल जीनों की अभिव्यक्तियाँ नियंत्रित हुईं।

ह्यूमिक अम्ल चुकंदर में सूखे के तनाव को कम करता है

३० लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से ह्यूमिक अम्ल के प्रयोग से जड़ की लंबाई, जड़ और शीर्ष का भार/पौधा, शीर्ष/जड़ अनुपात, पत्ती क्षेत्रफल, और जड़ एवं शर्करा उपज में अधिकतम वृद्धि हुई। सोडियम की मात्रा को छोड़कर, अन्य सभी शर्करा गुणवत्ता लक्षणों में ३० लीटर प्रति हेक्टेयर ह्यूमिक अम्लों के प्रयोग से वृद्धि देखी गई। ETc ८० के अंतर्गत, बिना प्रयोग की तुलना में, ह्यूमिक अम्लों (३० लीटर प्रति हेक्टेयर) + चिटोसन (२०० मिलीग्राम प्रति लीटर) के प्रयोग से पर्ण रंध्र बंद होने का प्रतिशत ४८.८६ से घटकर ३१.०६% हो गया, जिससे जड़ और शर्करा उपज और गुणवत्ता में आशाजनक सुधार हुआ। निष्कर्षतः, ह्यूमिक अम्लों और काइटोसन के परस्पर प्रभाव ने एंटीऑक्सीडेंट सुरक्षा और रंध्रों के प्रदर्शन में अनुकूल परिवर्तन प्रदर्शित किए, जिससे कम जल आपूर्ति में उपज और शर्करा गुणवत्ता में सुधार हुआ। इस प्रकार, चुकंदर में ३० लीटर प्रति हेक्टेयर ह्यूमिक अम्ल और २०० मिलीग्राम प्रति लीटर काइटोसन

मिलाकर प्रयोब करने से २०% सिंचाई जल की बचत के साथ मध्यम सूखे का अच्छी तरह से प्रबंधन किया जा सकता है (मखलौफ इत्यादि, २०२२)।

ह्युमिक अम्ल फलियों में लवणता के तनाव को कम करता है

लवणों की उच्चतम सांद्रता (१२० मिली-मोलर) तथा ह्यूमिक अम्ल के अभाव में सोडियम क्लोराइड (NaCl), कैल्शियम क्लोराइड ($CaCl_2$), मैग्नीशियम क्लोराइड ($MgCl_2$) और पोटेशियम क्लोराइड (KCl) के प्रयोग से पौधों की मृत्यु देखी गई। हालाँकि, कैल्शियम क्लोराइड को छोड़कर, अन्य सभी लवण-प्रकारों और सांद्रताओं में ०.०५% और ०.१% ह्यूमिक एसिड उपचार (०.०५% एवं ०.१% घोल) के बाद किसी भी पौधे की मृत्यु नहीं हुई, जो ह्यूमिक एसिड की लवण-तनाव सुरक्षात्मक भूमिका को दर्शाता है। लवणीय सांद्रता बढ़ने के साथ पौधों में कुल क्लोरोफिल और नाइट्रेट की मात्रा में कमी दर्ज की गई, लेकिन यह कमी ह्यूमिक अम्ल की बढ़ती मात्रा के साथ नकारात्मक सहसंबंध प्रदर्शित करती है, अर्थात ह्यूमिक अम्ल के उपचार से इस ह्रास को प्रभावी रूप से कम किया जा सकता है। लवणता बढ़ने पर प्रोलाइन की मात्रा में वृद्धि देखी गई, जिसमें सोडियम क्लोराइड उपचार वाले पौधों में सर्वाधिक प्रोलाइन स्तर प्राप्त हुआ। लवणीय मृदा में ह्यूमिक अम्ल मिलाने से मृदा की विद्युत चालकता (EC), इलेक्ट्रोलाइट रिसाव और इलेक्ट्रोलाइट लीकेज में कमी, जबकि नाइट्रेट, नाइट्रोजन और फास्फोरस की उपलब्धता में वृद्धि देखी गई। ह्यूमिक अम्ल उपचार से जड़/तनों का शुष्क भार भी बढ़ा, जो बेहतर जल-पोषक अवशोषण, आयन परिवहन और जल-धारण क्षमता में सुधार से संभव हुआ (आयदिन इत्यादि, २०१२)।

जलभराव वाले मक्के में ह्यूमिक अम्ल

जलभराव (waterlogging) के दबाव में मक्का की वृद्धि पर ह्यूमिक अम्ल का सकारात्मक प्रभाव देखा गया है। एंथोसायनिन-आधारित ह्यूमिक अम्ल उत्पाद को पत्तियों पर लगाने के बाद पर्ण-रंग का फीका पड़ना (leaf discoloration) समाप्त हो गया, जो जस्ता (Zn) की मात्रा में वृद्धि के साथ संगत पाया गया। जलभराव की स्थिति में जिंकस्तर घट जाता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि Zn पौध चयापचय और जलभराव-तनाव प्रतिक्रिया में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। पत्तियों पर ह्यूमिक अम्ल का अनुप्रयोग उसकी संरचना और प्रयोग-दर के अनुसार जलभराव-जनित तनाव को कम करने की क्षमता रखता है, जिससे अल्पकालिक जलमग्नता के दौरान भी पौध-उत्पादकता बनाए रखने में सहायता मिलती है (पिटान इत्यादि, २०२४)।

ह्यूमिक अम्ल पालक में संयुक्त सूखा-लवणता तनाव को कम करता है

पालक की किस्म 'सीसाइड' के पौधों में ह्यूमिक अम्ल के उपचार से टहनियों और जड़ों दोनों में सोडियम आयन (Na^+) की मात्रा बढ़ी, किंतु सूखा × लवणता के संयुक्त उपचार की स्थिति में ह्यूमिक अम्ल के अनुप्रयोग से जड़ों में Na^+ संचयन में उल्लेखनीय कमी दर्ज की गई। इसके अतिरिक्त, टहनियों और जड़ों में Na^+, Na^+/K^+ अनुपात, तथा टहनियों में K^+ स्तर पर सूखा और लवणता के बीच प्रबल अंतःक्रियाएँ देखी गईं। जो यह दर्शाती हैं कि सूखा-तनाव, लवणता-जनित आयन असंतुलन को और अधिक तीव्र कर देता है, जबकि ह्यूमिक अम्ल जड़ों में आयनिक संतुलन (Na^+/K^+) को आंशिक रूप से पुनर्स्थापित करने में सहायक होता है।

निष्कर्ष

ह्यूमिक एसिड प्राकृतिक रूप से उपलब्ध, कम लागत वाला और पर्यावरण के अनुकूल उत्पाद है। यह फसल पर पड़ने वाले कई अजैविक तनावों जैसे सूखा लवणता, गर्मी और जलभराव आदि को कम करने में कारगर साबित हुआ है।

संदर्भ

आयदिन, ए., कांत, सी., और तुरान, एम. (२०१२)। ह्यूमिक अम्ल का प्रयोग, झिल्ली रिसाव को कम करके बीन (फेजोलस वल्गेरिस एल.) के पौधों के लवणता तनाव को कम करता है। *अफ्रीकन जर्नल ऑफ़ एग्रीकल्चरल रिसर्च*, ७(७), १०७३-१०८६।

चेन, क्यू., क्यू., ज़ेड., मा, जी., वांग, डब्ल्यू., दाई, जे., झांग, एम., वेई, ज़ेड., और लियू, ज़ेड. (२०२२)। ह्यूमिक अम्ल सूखे की स्थिति में मक्का की वृद्धि, प्रकाश संश्लेषण, हार्मोन और ऑस्मोलाइट्स प्रणाली को नियंत्रित करता है। *कृषि जल प्रबंधन*, २६३, १०७४४७।

चोई, एस., हार्वे, जे. टी., और लेस्कोवर, डी. आई. (२०२४)। ठोस ह्यूमिक पदार्थ ने सूखे, लवणता और दैनिक ताप तनाव के संयुक्त प्रभाव में पालक की अजैविक तनाव सहनशीलता को बढ़ाया। *प्लांट स्ट्रेस*, १३, १००५४४.

इब्राहिम, ई. ए., इब्राहिम, एन. ई. एस., और मोहम्मद, जी. जेड. (२०२४)। ब्रोकली में ह्यूमिक अम्ल के मृदा अनुप्रयोग द्वारा जल तनाव का शमन। *साइंटिफिक रिपोर्ट्स*, १४(१), अनुच्छेद २७६५.

मखलौफ, बी. एस. आई., खलील, एस. आर. ए. ई., और सौडी, एच. एस. (२०२२)। मध्यम और गंभीर सूखे की स्थिति में चुकंदर की उपज और शर्करा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए ह्यूमिक एसिड और चिटोसन की प्रभावकारिता। *मृदा विज्ञान और पादप पोषण जर्नल*, २२(२), १६७६-१६९१।

पिटान, बी., खान, के., और म्यू हलिंग, के. एच. (२०२४)। क्या ह्यूमिक एसिड का पत्तियों पर प्रयोग जल-तनावग्रस्त मक्का की वृद्धि और पोषक तत्व स्थिति को प्रभावित करता है? *पादप पर्यावरण अंतर्क्रियाएँ*, ५(३), e१०१५६।

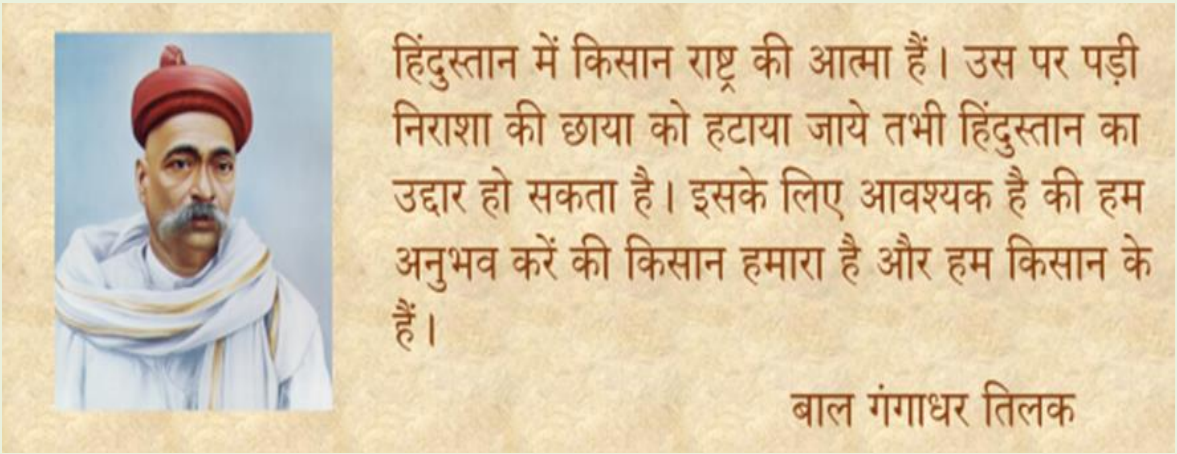

बकरियों में गर्मी का प्रभाव एवं प्रबंधन

ऋतुजा पवार, भावना अहिवले, सचिन पवार, महेश गुप्ता, नितिन कुराडे, अविनाश निर्मले
भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

बकरियों को सदैव एक मूल्यवान पशु माना गया है। इन्हें "गरीबों की गाय" कहा जाता है। बकरी ऐसे संसाधन-सीमित किसानों के लिए एक आदर्श पशु है, जो बड़े पशुओं का पालन नहीं कर सकते। बकरियाँ ग्रामीण छोटे किसानों के लिए किसी स्मार्ट कार्ड या एटीएम की तरह होती हैं, क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर इन्हें कभी भी आसानी से बेचा जा सकता है। बकरियों की लोकप्रियता के कई कारण हैं जैसे इनकी उच्च प्रजनन क्षमता, अधिक संतानोत्पत्ति दर तथा कम गर्भावधि। उनमें विषम जलवायु सहने की विशेष क्षमता होती है, वे कम गुणवत्ता वाले चारे में भी सहजता से जीवित रह सकती हैं। मुक्त चरागाह व्यवस्था में भी इनका पालन सुगमता से किया जा सकता है, और अपने आकार के अनुपात में वे उच्च उत्पादकता देती हैं। बकरी फार्म स्थापित करने का खर्च, गाय या भैंस के फार्म की तुलना में अपेक्षाकृत कम होता है, और आर्थिक जोखिम भी कम रहता है। बकरी पालन ग्रामीण क्षेत्र की आबादी, विशेषकर महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बकरियाँ पोषण एवं खाद्य सुरक्षा का प्रमुख स्रोत होने के साथ-साथ ग्रामीण विकास का आधार भी हैं। वर्तमान परिदृश्य में, बकरी पालन खाद्य संसाधनों की सुरक्षा के लिए एक विश्वसनीय और टिकाऊ समाधान के रूप में उभर कर सामने आया है। ये कृषि क्रांति और मानव अस्तित्व के विकास में भी अहम भूमिका निभाती हैं।

बकरी में गर्मी का तनाव

जब अत्यधिक गर्मी के कारण बकरी के शरीर का तापमान उनकी स्वाभाविक नियंत्रण क्षमता से अधिक बढ़ जाता है, तो उनके शरीर में कई शारीरिक एवं व्यवहारिक परिवर्तन, जो गर्मी के तनाव को दर्शाते हैं। तापीय तनाव वह स्थिति है जिसमें बकरी को ऊष्मावान वातावरण के कारण शारीरिक असुविधा का अनुभव होता है। बकरियों के शरीर का सामान्य तापमान ३८.५ से ३९.७ डिग्री सेल्सियस (१०१-१०३ डिग्री फ़ारेनहाइट) के बीच होता है। बकरियाँ विभिन्न वातावरणों में समन्वय और जीवन-यापन की अपनी अद्वितीय क्षमता के लिए जानी जाती हैं, विशेषकर उष्णकटिबंधीय और अर्ध-शुष्क जैसे गर्म और शुष्क क्षेत्रों में। इसी कारण, वे जलवायु परिवर्तन के दौर में खाद्य-सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण पशु मानी जाती हैं। हालाँकि, जब वातावरण का तापमान अत्यधिक बढ़ जाता है, तो शरीर के अंदर गर्मी उत्पादन व निकासी के बीच संतुलन बिगड़ जाता है, जिससे बकरियों को स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं और कार्यक्षमता में कमी का सामना करना पड़ सकता है। उच्च तापमान की स्थिति में बकरियाँ अपना शरीर-ताप सामान्य सीमा में बनाए रखने में असमर्थ हो जाती हैं, जिससे तापीय तनाव उत्पन्न होता है। यह उनकी स्वास्थ्य, उत्पादन और प्रजनन क्षमता को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है। फिर भी, अन्य पशुओं की तुलना में बकरियों में गर्मी सहन करने की क्षमता अधिक पाई जाती है। अधिकांश पशुधन प्रजातियों विशेषकर दुग्ध उत्पादन

के लिए पालन किए जाने वाले पशुओं में गर्मी के तनाव की समस्या अधिक देखने को मिलती है, क्योंकि उन्हें दूध उत्पादन बनाए रखने के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

गर्मी के तनाव के संकेत/लक्षण

शरीर के तापमान में वृद्धि, मुंह खोलकर सांस लेना, चारा या भोजन की मात्रा में कमी, शरीर में कमजोरी या थकावट, संक्रमण की संभावना में वृद्धि, दूध उत्पादन में कमी, प्रजनन क्षमता का घट जाना, प्रतिरक्षा प्रणाली की कमजोरी, युवा बकरियों की वृद्धि दर में कमी, विभिन्न रोगों के प्रति संवेदनशीलता का बढ़ना, बढ़ी हुई चयापचयजन्य ऊष्मा उत्पादन, कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली, इत्यादि बकरियों में गर्मी के तनाव के प्रतिलक्षण हैं।

बकरियों में ताप तनाव का प्रतिकूल प्रभाव

बकरियों पर गर्मी तनाव के विभिन्न प्रतिकूल प्रभाव उनकी स्वास्थ्य एवं उत्पादन क्षमता को कम कर देते हैं। पर्यावरणीय चुनौतियाँ, जैसे तीव्र गर्मी, वे बाह्य कारक हैं जो बकरियों की सामान्य एवं स्वस्थ स्थिति को बिगाड़ने में सक्षम होती हैं। तापीय तनाव बकरियों के व्यवहार, वृद्धि एवं विकास, प्रजनन क्षमता, शारीरिक क्रियाओं, स्वास्थ्य, रोग-प्रतिरोधक क्षमता, दूध उत्पादन एवं उसकी गुणवत्ता, मांस की गुणवत्ता, तथा शरीर संरचना को प्रभावित कर सकता है। इसके साथ ही, यह बकरियों की समय के साथ अपने वातावरण के प्रति अनुकूलन क्षमता को भी कमजोर कर सकता है। गर्मी के तनाव के कारण शारीरिक, व्यवहारिक, तथा वृद्धि और विकास से जुड़े अनेक मानक प्रतिकूल रूप से प्रभावित होते हैं। जलवायु परिवर्तन के चलते हाल के वर्षों में गर्म लू की तीव्रता और आवृत्ति में वृद्धि हुई है, जिससे बकरियों के स्वास्थ्य और उत्पादकता पर खतरा बढ़ गया है। ऐसी परिस्थितियों में, किसानों के लिए यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि वे सतत और वैज्ञानिक आधार पर प्रमाणित प्रबंधन पद्धतियाँ अपनाएँ ताकि बकरियों को गर्मी के प्रतिकूल प्रभावों से बचाया जा सके और उनकी उच्च उत्पादकता सुनिश्चित की जा सके।

बकरियों में गर्मी के तनाव का प्रबंधन

बकरियाँ चरम मौसम में रह सकती हैं परंतु बहुत ज़्यादा गर्मी उनकी प्रजनन और ठीक से बढ़ने की क्षमता को कम कर सकती है। इसलिए यह समझना ज़रूरी है कि तापीय तनाव उन्हें कैसे प्रभावित करता है। इस प्रभाव को कम करने के तरीके:

- पर्याप्त मात्रा में ताजा, साफ, व ठंडा पानी दें।
- छाया या धूप से बचने के लिए आश्रय दें।
- बकरी के शेड में उचित वायु-संचार सुनिश्चित करें।
- तनाव और तापीय प्रभाव कम करने के लिए आश्रय और शेड को नियमित रूप से साफ करें।
- सुबह या शाम के समय बकरियों को खिलाएँ क्योंकि उस समय वातावरण में तापमान कम होता है।
- गर्म मौसम में, अगर संभव हो तो, फव्वारा या पंखे का इस्तेमाल करें।
- बकरियों की नियमित जाँच करें क्योंकि हमें गर्मी के तनाव के किसी भी संकेत या लक्षण के बारे में पता होना आवश्यक है।
- दिन में दो बार पर्यावरणीय तापमान और आर्द्रता का विवरण या डेटा दर्ज करना।
- बकरी के गुदा तापमान और श्वसन दर को सप्ताह में दो दिन जाँचना या रिकॉर्ड करना।
- गर्मी के तनाव के कुप्रभाव को कम करने के लिए आहार में पोषण संबंधी संश्तुतियों का उपयोग करना।
- अत्यधिक गर्मी के दौरान उन्हें शांत रखें और शारीरिक परिश्रम कम कराएं।
- स्वस्थ बकरियां गर्मी को बेहतर तरीके से झेल पाती हैं। उचित कृमि मुक्ति और टीकाकरण कार्यक्रम का पालन करें।
- बकरियों में ताप तनाव से बचाने के लिए सक्रिय और एकीकृत प्रबंधन की अपलाए जाएं।

निष्कर्ष

बकरियों को आमतौर पर ऐसे पशु के रूप में जाना जाता है, जो विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में आसानी से रह सकती हैं। हालांकि, वे भी पर्यावरणीय तनाव, विशेष रूप से तापीय तनाव (हीट स्ट्रेस), से पूरी तरह सुरक्षित नहीं हैं। वैश्विक तापवृद्धि और मौसम के असामान्य बदलावों के कारण अब ताप तनाव पहले की तुलना में कहीं अधिक हो गया है। यह बकरियों के लिए एक गंभीर समस्या बनता जा रहा है, क्योंकि इससे उनके उत्पादन, समग्र स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बकरियों में तापीय तनाव तब उत्पन्न होता है जब वे अत्यधिक तापमान के संपर्क में आती हैं। इसका सबसे बड़ा प्रभाव दूध और मांस उत्पादन पर पड़ता है। गर्मी के तनाव के लक्षणों में कमजोरी, भूख में कमी, दूध या मांस का कम उत्पादन, और सुस्ती आदि शामिल हैं। विशेषकर आर्द्र वातावरण में ऊष्मा तनाव अधिक होता है, और यह छोटे, वृद्ध या गर्भवती बकरियों को अधिक प्रभावित करता है। तनावों को रोकने के लिए बकरियों को उचित शेड, साफ और पर्याप्त मात्रा में पानी, तथा अन्य आवश्यक उपायों की आवश्यकता होती है, ताकि वे अनुकूल वातावरण में स्वस्थ रह सकें। जलवायु परिवर्तन के दौर में बकरियों को स्वस्थ एवं सक्रिय बनाए रखने हेतु ताप तनाव का उचित प्रबंधन महत्वपूर्ण है। इसके लिए आवश्यक है कि गर्मी के हानिकारक प्रभावों की समय पर पहचान कर समुचित देखभाल और प्रबंधन किया जाए। ताप तनाव के प्रभावी प्रबंधन के लिए पर्यावरणीय नियंत्रण, संतुलित पोषण, समय पर स्वास्थ्य देखभाल और व्यवहार से संबंधित बदलावों के संयोजन की आवश्यकता होती है। इनको अपनाकर किसान गर्मी के नकारात्मक प्रभावों को कम कर सकते हैं, जिससे बकरियों का स्वास्थ्य और उत्पादकता बेहतर बनाई जा सकती है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग के माध्यम से अजैविक तनाव प्रबंधन

सोनम, राम नरायन सिंह, सुधीर कुमार मिश्र, एलीजा प्रधान, सुनील कुमार दास

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence, AI) और मशीन लर्निंग (Machine Learning, ML) ने कृषि में एक नए युग की शुरुआत की है, जिससे खेती अधिक प्रभावी, सटीक और आधुनिक बन रही है। ये तकनीकें न केवल पारंपरिक कृषि समस्याओं को हल करने में मदद करती हैं, बल्कि अजैविक तनावों जैसे सूखा, लवणता, तापीय तनाव, शीत तनाव, जलभराव और पोषक तत्वों की कमी से निपटने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। दुनिया की जनसंख्या वर्ष २०५० तक नौ अरब से अधिक होने की संभावना है, जिसके भरण-पोषण के लिए कृषि उत्पादन में लगभग ७०% की वृद्धि आवश्यक होगी । इसलिए, भूमि, फसल और जल संसाधनों की उत्पादकता में वृद्धि तथा संरक्षण नितांत आवश्यक है। इस परिस्थिति में, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग जैसी स्मार्ट आधुनिक तकनीकें खेती को टिकाऊ, जलवायु-अनुकूल और तनाव-प्रतिरोधी बनाने की दिशा में अहम योगदान दे सकती हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता शब्द का इस्तेमाल पहली बार १९५५ में जॉन मैकार्थी ने किया था, उन्होंने इसे "बौद्धिक मशीनें बनाने का विज्ञान और अभियांत्रिकी" के रूप में परिभाषित किया। कृत्रिम बुद्धिमत्ता को ऐसे सिस्टम या मशीनों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो इंसानों की तरह सोच समझकर काम करती हैं और नई जानकारियों से सीखकर समय-समय पर खुद में सुधार करती हैं। कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का मुख्य उद्देश्य संसाधनों का अधिकतम उपयोग, उत्पादकता बढ़ाना, पर्यावरणीय दुष्प्रभाव कम करना, और फसलों को विभिन्न अजैविक तनावों के प्रति सहनशील बनाना है। मशीन लर्निंग, कृत्रिम बुद्धिमत्ता की ही एक शाखा है। यह सांख्यिकीय मॉडल और एल्गोरिद्म विकसित करने पर केंद्रित है । यह ऐसे गणितीय मॉडल और तरीकों पर काम करती है जिससे मशीनें बिना किसी स्पष्ट प्रोग्रामिंग के, केवल डेटा देखकर खुद सीख सकती हैं। इस प्रक्रिया में बड़े पैमाने पर आंकड़ों को मॉडल में दिया जाता है, जिससे वह ढाँचे (पैटर्न) की पहचान करता है। बार-बार सीखने की प्रक्रिया से मशीन अपना प्रदर्शन बेहतर करती है और नए, पहले से न देखे गए आंकड़ों को संभालने में ज्यादा सक्षम हो जाती है। यह मिट्टी की नमी, तापमान, वर्षा, वायुमंडलीय आर्द्रता, और पोषक तत्वों जैसे कारकों के आंकड़ों से यह समझने में सक्षम है कि कौन-से पर्यावरणीय कारक फसलों के प्रदर्शन को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। इस प्रकार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग न केवल उत्पादकता बढ़ाने में सहायक हैं बल्कि अधोलिखित अजैविक तनावों के प्रबंधन में क्रांतिकारी भूमिका निभा सकती हैं:

- **सूखा तनाव:** मिट्टी की नमी और मौसम आंकड़ों से सूखा पूर्वानुमान लगाना और जल उपयोग दक्षता बढ़ाना।
- **लवणता तनाव:** मिट्टी और पानी की विद्युत चालकता (EC) का विश्लेषण कर फसल चयन और सुधार रणनीतियाँ तय करना।
- **तापीय तनाव:** उच्च या निम्न तापमान की स्थितियों में फसल की वृद्धि का पूर्वानुमान और प्रबंधन।
- **जलभराव या पोषक तत्व असंतुलन:** सेंसर आधारित आंकड़ों से खेत की स्थिति का निरंतर मूल्यांकन करना।

इस प्रकार, AI और ML का सम्मिलित उपयोग एक स्मार्ट, जलवायु-अनुकूल, और तनाव-प्रतिरोधी कृषि प्रणाली के निर्माण में मदद करता है। अगर किसान, वैज्ञानिक और संस्थान मिलकर सतत-कृषि तकनीकों को अपनाते हैं, तो इन नवाचारों के माध्यम से भविष्य में खाद्य सुरक्षा, पर्यावरणीय स्थिरता, और कृषि-आधारित आजीविका को सुदृढ़ बनाया जा सकता है। चित्र १ में प्रस्तुत मशीन लर्निंग के तीन प्रकार हैं (हिह्न एंड ब्राउन, २०२०; मोरालेस एंड एस्कलांटे, २०२२), तालिका १ में संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

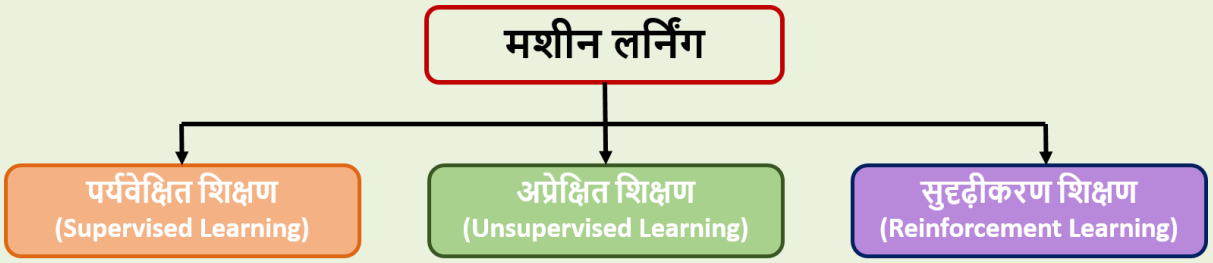

चित्र १: मशीन लर्निंग के प्रकार

तालिका १: मशीन लर्निंग के प्रकार तथा उनका संक्षिप्त विवरण

	मशीन लर्निंग के प्रकार	साधारण व्याख्या	कैसे काम करता है?
१	पर्यवेक्षित शिक्षण (Supervised Learning)	पहले से सही उत्तर वाले आंकड़ों से सीखना	मॉडल को उदाहरण और उनके सही उत्तर दिए जाते हैं, ताकि भविष्य में सही अनुमान लगा सके।
२	अप्रेक्षित शिक्षण (Unsupervised Learning)	बिना लेबल वाले आंकड़ों से सीखना	मॉडल खुद आंकड़ों में पैटर्न और समूह पहचानता है।
३	सुदृढ़ीकरण शिक्षण (Reinforcement Learning)	अनुभव से सीखना	मॉडल को अच्छे निर्णय पर प्रोत्साहन और गलत निर्णय पर दंड मिलता है, जिससे सही निर्णय करना सीखता है।

मशीन लर्निंग की प्रक्रिया

मशीन लर्निंग में कई चरण होते हैं (चित्र २), जिनमें हर कदम आंकड़ों को बेहतर बनाने और सही परिणाम पाने में मदद करता है। अधोलिखित विन्दुओं में इनका संक्षिप्त विवरण किया गया है।

1. **आंकड़ों को एकत्र करना:** काम के अनुसार सही और पर्याप्त मात्रा में आंकड़े जुटाना। पर्याप्त और विविध आंकड़े होने से मॉडल अधिक सटीक और विश्वसनीय बनता है।
2. **आंकड़ों की जाँच करना:** आंकड़ों में गलतियाँ, खाली मान आदि हटाकर उसे उपयोग के लायक बनाना। उदाहरण के लिए, किसी मौसम आंकड़े में गलत तापमान या गायब बारिश के आंकड़े मॉडल के निष्कर्ष को प्रभावित कर सकते हैं। इसे सुधारना जरूरी है ताकि मॉडल सही ढंग से सीख सके।

3. **महत्वपूर्ण जानकारी चुनना:** आंकड़ों की सभी जानकारी मॉडल के लिए उपयोगी नहीं होती। केवल वही विशेषताएँ चुनना जरूरी है जो परिणाम को प्रभावित करती है, ताकि समय और संसाधन बचें और मॉडल की सटीकता बढ़े ।
4. **आंकड़ों का विभाजन:** आंकड़ों को दो हिस्सों में बाँटा जाता है, एक हिस्सा (७०%) मॉडल को सिखाने के लिए और दूसरा (३०%) उसे जाँचने-परखने के लिए।
5. **मॉडल प्रशिक्षण और विकास:** मशीन को आंकड़ों से सीखने और अपने नियम बनाने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। यह चरण मशीन को नियम और पैटर्न समझने में मदद करता है।
6. **मॉडल मूल्यांकन:** यह देखा जाता है कि मॉडल नए आंकड़ों पर कितना अच्छा काम करता है।
7. **पूर्वानुमान/वर्गीकरण:** सिखाया हुआ मॉडल अब नए आंकड़ों पर परिणाम बताता है।

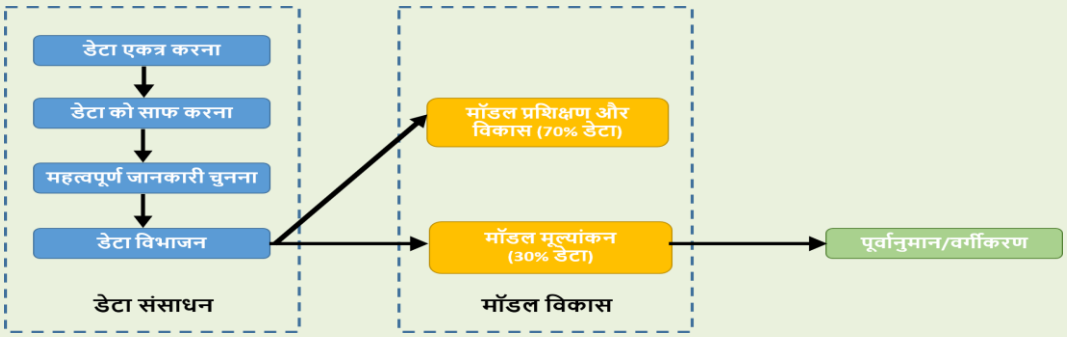

चित्र २: मशीन लर्निंग की प्रक्रिया

तालिका २: कृषि में इस्तेमाल होने वाले मुख्य मशीन लर्निंग एल्गोरिद्म

मशीन लर्निंग एल्गोरिद्म	विवरण / अजैविक तनाव प्रबंधन में उपयोग
निर्णय वृक्ष (Decision Trees)	निर्णय लेने के लिए पेड़ जैसी संरचना का उपयोग। उदाहरणतः यह पता लगाने के लिए कि कौन-से पर्यावरणीय कारक (जैसे मिट्टी की नमी, तापमान) सूखा तनाव में सबसे अधिक योगदान देते हैं।
रैंडम फॉरेस्ट (Random Forests)	कई निर्णय वृक्षों का समूह जो अधिक सटीक परिणाम देता है। इसका उपयोग तनाव-सहिष्णु किस्मों के चयन या लवणता सहिष्णु क्षेत्रों की पहचान में किया जा सकता है।
सपोर्ट वेक्टर मशीन (Support Vector Machine)	आंकड़ों को अलग-अलग वर्गों में बाँटने की तकनीक। उदाहरण के लिए, फसलों को "तनावग्रस्त" और "तनाव-मुक्त" श्रेणियों में वर्गीकृत करने के लिए।
न्यूरल नेटवर्क और डीप लर्निंग (Neural Networks & Deep Learning)	जटिल पैटर्न पहचानने में सक्षम। इमेज प्रोसेसिंग के माध्यम से यह फसल की पत्तियों पर सूखा या तापीय तनाव के लक्षणों की पहचान कर सकता है।
के-नीयरेस्ट नेबर (K-Nearest Neighbors)	आसपास के उदाहरणों से सीखकर निर्णय लेना। इसका उपयोग उन खेतों की पहचान में किया जा सकता है जिनकी पर्यावरणीय स्थिति पहले से ज्ञात तनावग्रस्त क्षेत्रों से मिलती-जुलती है।

कृषि में मशीन लर्निंग के उपयोग

१. फसल प्रबंधन:

मशीन लर्निंग तकनीकें फसलों की वृद्धि, स्वास्थ्य और पर्यावरणीय तनाव स्थितियों पर निगरानी रखने में मदद करती हैं।

- **पौधों की बीमारियाँ और कीटें की पहचान:** उच्च-गुणवत्ता वाली इमेज प्रोसेसिंग और कंप्यूटर विज़न के जरिए पौधों में रोग या कीट की पहचान की सटीक जाती है।
- **अजैविक तनाव की पहचान:** उपग्रह चित्रों, ड्रोन डेटा और स्पेक्ट्रल इंडेक्स (जैसे NDVI, NDWI) की मदद से सूखा, लवणता, तापीय या पोषक तत्व तनावों के प्रारंभिक संकेतों की पहचान की जा सकती है।
- **फसल की उपज का अनुमान:** मौसम, मिट्टी, बीज की किस्म, सिंचाई और तनाव स्थितियों (जैसे उच्च तापमान या जल की कमी) के आंकड़ों से उपज का अनुमान लगाया जा सकता है।

२. जल प्रबंधन:

जल संसाधन की कमी सूखा-प्रभावित क्षेत्रों में कृषि में सबसे बड़ी चुनौती है । जल प्रबंधन के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग का उपयोग निम्नलिखित तरीकों से किया जा सकता है ।

- **मिट्टी में नमी की जाँच:** सेंसर आधारित मॉडल मिट्टी की नमी का त्वरित आंकलन करते हैं ताकि सूखा स्थितियों में सटीक सिंचाई व्यवस्था की जा सके।
- **सटीक सिंचाई:** मशीन लर्निंग मॉडल यह तय करते हैं कि किस खेत को कितना पानी चाहिए। इससे जल-तनाव की स्थिति कम होती है।
- **सूखा पूर्वानुमान:** मौसम, वर्षा और वाष्पीकरण आंकड़ों से सूखा आने की संभावना का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

३. मिट्टी प्रबंधन:

मिट्टी की गुणवत्ता सीधे फसल की तनाव सहिष्णुता को प्रभावित करती है। मिट्टी के माप अक्सर समय लेने वाले और महंगे होते हैं, लेकिन मशीन लर्निंग का उपयोग करके कम्प्यूटर से विश्लेषण करने पर सटीक और सस्ते दर पर मृदा आकलन किया जा सकता है ।

- **मिट्टी की उर्वरता और लवणता पहचान:** सेंसर और उपग्रह आंकड़ों से मिट्टी का विश्लेषण कर लवण-प्रभावित क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है।

- **मिट्टी की नमी और पोषक तत्व संतुलन:** मशीन लर्निंग मॉडल मिट्टी में नमी और पोषक तत्वों की कमी का अनुमान लगाते हैं ताकि सूखा और पोषण तनाव से बचा जा सके।
- **उचित मात्रा और सही खाद की सलाह:** तनावग्रस्त परिस्थितियों में पौधों को अधिक या कम पोषक तत्वों की आवश्यकता हो सकती है। मॉडल यह तय करते हैं कि कौन-सी खाद कितनी मात्रा में देनी है।
- **जल प्रबंधन सुधारना:** मिट्टी और जल आंकड़ों का विश्लेषण करके लवणता या जलभराव जैसी स्थितियों में उत्तम सिंचाई योजना तैयार की जा सकती है।

४. पशुधन प्रबंधन:

मशीन लर्निंग पशुओं की उत्पादकता और स्वास्थ्य पर मौसमीय एवं पर्यावरणीय तनाव के प्रभाव को समझने में सहायक है।

- **तापीय तनाव की पहचान:** सेंसर और कैमरा से लिए आंकड़ों के माध्यम से पशुओं के शरीर का तापमान, श्वसन दर और गतिविधियों का विश्लेषण करके गर्मी तनाव का पता लगाया जा सकता है।
- **जल एवं पोषण आवश्यकता:** मॉडल तापमान और नमी के आधार पर पशुओं की जल एवं पोषण आवश्यकताओं का अनुमान लगाते हैं।

५. जलवायु परिवर्तन और अनुकूलन:

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग तकनीकें जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पन्न होने वाले विभिन्न अजैविक तनावों के पूर्वानुमान और अनुकूलन में अहम हैं।

- **मौसम और तनाव जोखिम मूल्यांकन:** मॉडल बाढ़, सूखा, तापीय तरंगों या ठंड के जोखिम का मूल्यांकन करते हैं।
- **मौसम की भविष्यवाणी:** ऐतिहासिक और रियल-टाइम आंकड़ों से भविष्य के तापमान, वर्षा और आर्द्रता का अनुमान लगाकर फसल प्रबंधन निर्णय लिए जाते हैं।
- **तनाव-संवेदनशील क्षेत्रों की मैपिंग:** उपग्रह और GIS आधारित मॉडल विभिन्न क्षेत्रों की तनाव संवेदनशीलता का नक्शा तैयार करते हैं।
- **अनुकूल फसल योजना:** मौसम और तनाव पूर्वानुमान के अनुसार उपयुक्त फसल, बुवाई समय और किस्म का सुझाव दिया जा सकता है।

६. रोबोटिक्स और स्वचालन:

रोबोटिक्स और मशीन लर्निंग के संयोजन से कृषि कार्यों को न केवल स्वचालित बल्कि तनाव-संवेदनशील स्थितियों के अनुकूल भी बनाया जा सकता है।

- **स्वचालित सिंचाई प्रणाली:** सेंसर और ड्रोन रियल-टाइम आंकड़ों के आधार पर सूखे या जलभराव की स्थिति में पानी की आपूर्ति को स्वनियंत्रित कर सकते हैं।
- **तनाव निगरानी रोबोट:** खेतों में घूमने वाले रोबोट फसलों की पत्तियों और मिट्टी से आंकड़े लेकर सूखा, लवणता या तापीय तनाव के संकेत पहचान सकते हैं।
- **सटीक खेती:** रोबोट और ड्रोन तनावग्रस्त क्षेत्रों में पोषक तत्व या पानी के समुचित प्रबंधन द्वारा संसाधनों के सदुपयोग में मदद करते हैं।
- **स्वचालित तनाव निदान:** डीप लर्निंग आधारित कैमरे फसलों की पत्तियों में तनाव लक्षणों को स्वतः पहचान कर किसानों को तुरंत अलर्ट भेजते हैं।

निष्कर्ष

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग में इतनी क्षमता है कि ये खेती से जुड़ी बड़ी से बड़ी चुनौतियों जैसे बढ़ती जनसंख्या, मौसम में बदलाव, खाद्य सुरक्षा और रोजगार की कमी से निपटने में मदद कर सकती हैं। ये तकनीकें किसानों को आंकड़ों के आधार पर सही निर्णय लेने में मदद करती हैं, जिससे उत्पादन बढ़ता है, संसाधनों का बेहतर उपयोग होता है और खेती अधिक टिकाऊ व लाभकारी बनती है।

संदर्भ

हिन, एच., & ब्रौन, डी. ए. (२०२०). श्रेणीबद्ध शिक्षण प्रणालियों में विशेषज्ञता. *न्यूरल प्रोसेसिंग लेटर्स, ५२(३), २३१९–२३५२.*

मोरालेस, ई. एफ., & एस्कलांटे, एच. जे. (२०२२). पर्यवेक्षित, अप्रेक्षित और सुदृढ़ीकरण शिक्षण का संक्षिप्त परिचय. *कंप्यूटेशनल लर्निंग और इंटेलिजेंस के उपयोग से बायोसिग्नल प्रोसेसिंग और वर्गीकरण* (पृष्ठ १११–१२९). एल्सेवियर.

कविता : मन के भीतर

अमृत मोरडे

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

मनुष्य का मन एक जटिल और रहस्यमय संरचना है, जो विचारों, भावनाओं और अनुभूतियों का केंद्र होता है। यह हमारी संज्ञानात्मक और भावनात्मक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है, और हमारे अनुभवों और व्यवहारों को आकार देता है। मन की विभिन्न अवस्थाएँ, जैसे चेतना, अवचेतना और अचेतन, हमारे जीवन की दिशा और निर्णयों को प्रभावित करती हैं। मन को समझने की कोशिश सदियों से चलती आई है।

मन के भीतर.....

मन में बसता प्रतिरूप संसार ,
भीतर इसके चलता अविरत व्यापार।
नाव सपनों की इसमें तैरती,
भावनाओं की लहरें हैं बहती।

बुद्धि करे इसका नियंत्रण,
करे विवेक-अविवेक का चयन।
काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ,
मन के संग- हो जाते तमो गुण साकार।

चिंता में परेशान,
चिंतन में भाग्यवान।
अनजाने रास्ते में निराशा की धुंध,
तो कभी आशा की सुगंध।

मन की है गति अपार,
वायु से भी तेज- क्षण बदले इसका आकार।
तल्लीन हो जाना, है इसे वरदान,
ज्ञान-भक्ति का साधनामार्ग करे स्वयं प्रदान ।

मन बड़ा दुश्चित्त- दुराग्रही न इसमें संशय,
अभ्यास-स्वाध्याय से जोड़ना, है वैराग्य का आशय।
भगवद्गीता में कहा कृष्ण ने,
सभी इन्द्रियों में मन है मेरी विभूति।
जीत कर उसे तुम, कर लो स्वयं में परमात्मा की अनुभूति।

अजैविक तनाव सहनशीलता के लिए ब्रासिनोस्टेरॉइड का अनुप्रयोग

दीपांकर बर्मन[१,२], प्रशांत कुमार एस. हंजागी[२], ललित के. मीना[१], जगदीसन बी.[२,३], सुषमा अवाजी[२]

[१]भाकृअनुप-भारतीय सरसों अनुसंधान संस्थान, सेवार, भरतपुर, राजस्थान -३२१३०३

[२]भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

[३]भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा परिसर, नई दिल्ली - ११००१२

परिचय

अजैविक तनाव कृषि विकास में एक प्रमुख बाधा है, जिससे फसल उत्पादकता में काफी कमी आती है। अजैविक तनाव के प्रति पौधों की प्रतिक्रिया में अत्यंत जटिल और बहुआयामी तंत्र शामिल होते हैं, जिनमें से कई अभी भी स्पष्ट किए जा रहे हैं। हाल के वर्षों में, अजैविक तनाव को कम करने में फाइटोहोर्मोन की भूमिका ने पौधों की अनुकूलन प्रक्रियाओं पर उनके नियामक प्रभाव के कारण महत्वपूर्ण ध्यान आकर्षित किया है। पौधे विभिन्न शारीरिक और आणविक मार्गों को बदलकर प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल होते हैं, और ये प्रतिक्रियाएं ब्रासिनोस्टेरॉइड (बीआर) सहित बाहरी और आंतरिक फाइटोहोर्मोन स्तरों में परिवर्तन के साथ समन्वित होती हैं। ब्रैसिनोस्टेरॉइड, एक महत्वपूर्ण पादप वृद्धि नियामक है जो पौधों की वृद्धि और विकास में सहायक है, और जन्तु स्टेरॉयड हार्मोन से संरचनात्मक रूप से समान हैं।

जलवायु परिवर्तन से पौधों में कई प्रकार के जैविक और अजैविक तनाव उत्पन्न होते हैं, जिसके उतार-चढ़ाव से पौधों की सामान्य शारीरिक और आणविक प्रक्रियाएं बाधित हो सकती हैं। प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में जीवित रहने और प्रजनन करने के लिए, पौधों को वृद्धि और विकासात्मक कार्यों को बनाए रखते हुए तनाव सहनशीलता को बढ़ाना आवश्यक है। इसलिए, वृद्धि, विकास और तनाव सहनशीलता के बीच इष्टतम संतुलन महत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में, पादप हार्मोन और चयापचयी तत्व विभिन्न शारीरिक और जैव रासायनिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो अंततः तनाव सहनशीलता को बढ़ाने में योगदान करते हैं।

विभिन्न पादप हार्मोनों में, ब्रासिनोस्टेरॉइड्स पौधों की वृद्धि और विकास में अपने बहुमुखी नियामक कार्यों के कारण एक विशेष रूप से प्रभावशाली हैं (हाफ़िज़ एट अल., २०२१)। ब्रासिनोस्टेरॉइड्स प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले वृद्धि-प्रोत्साहक यौगिक हैं जो पराग, बीज और नये वानस्पतिक ऊतकों में कम सांद्रता में मौजूद होते हैं। व्यापक शोध से पता चला है कि बीज अंकुरण, कोशिका विस्तार, प्रकाश-रूपजनन, जाइलम विभेदन, तने और जड़ का विस्तार, पुष्पीय आरंभ और फूलों और फलों के निर्माण सहित कई विकासात्मक प्रक्रियाओं के लिए ब्रासिनोस्टेरॉइड्स आवश्यक हैं। विकासात्मक भूमिकाओं के अलावा, ब्रासिनोस्टेरॉइड्स तापमान, सूखा और लवणता जैसी कई अजैविक तनाव स्थितियों के तहत पौधों की प्रतिक्रियाओं में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। वे विभिन्न प्रकार के रोगजनकों के खिलाफ

पौधों की रक्षा प्रणाली को भी बढ़ाते हैं (झांग व अन्य, २०१४; वेई और ली, २०१६)। पौधों में प्रमुख ब्रासिनोस्टेरॉइड्स कार्यों का सारांश चित्र १ में दर्शाया गया है।

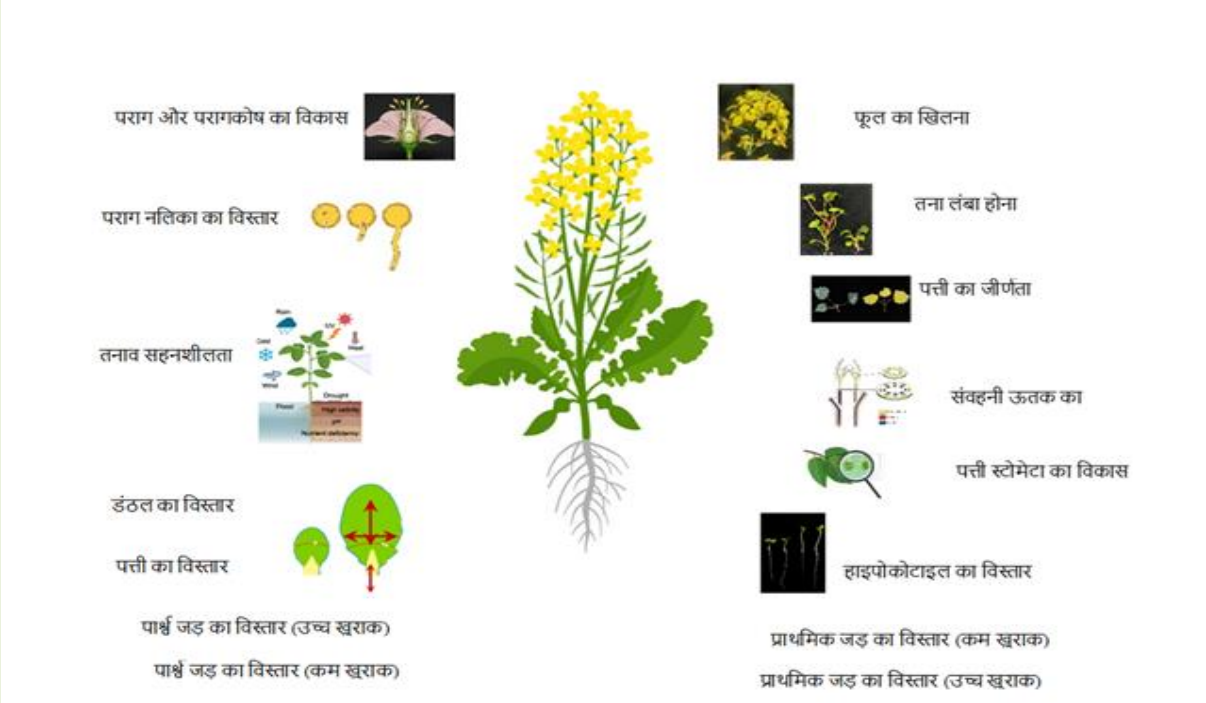

चित्र १: पौधों की वृद्धि और अजैविक तनाव सहनशीलता में ब्रासिनोस्टेरॉइड की भूमिका

ब्रैसिनोस्टेरॉइड के पादप कार्यिकी और अजैविक तनाव सहनशीलता पर प्रभाव

ब्रैसिनोस्टेरॉइड पौधे के जीवन चक्र में वृद्धि और विकासात्मक प्रक्रियाओं में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिनमे अंकुरण, जड़, तना, पुष्प आदि अंगों का बढ़ाव और जीर्णता, पराग नलिका की वृद्धि, जाइलम विभेदन और जीन अभिव्यक्ति का नियमन, ऊतक विभेदन का नियमन, फल वहन का अनुपात बढ़ाना, एकांकी वजन में वृद्धि, वर्णहीनता और प्रजनन विकास शामिल हैं। इसके अलावा, विभिन्न पर्यावरणीय तनावों जैसे प्रकाश, कम या उच्च तापमान, सूखा, लवणीय तनाव, भारी धातु तनाव, खरपतवार से नुकसान, और रोग कारक के प्रभाव के अनुकूलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ब्रैसिनोस्टेरॉइड के प्रयोग से कार्यिकी परिपक्वता की अवस्था में किसी भी अन्य उपचार की तुलना में अधिक शुष्क भार का संग्रहण होता है। ब्रैसिनोस्टेरॉइड के मुख्य प्रभाव विभिन्न पर्यावरणीय तनावों में निम्नलिखित हैः

१.सूखा तनाव

सूखे तनाव में, २४-एपाइब्रासिनोस्टेरॉइड (१-२ μM) का पर्णीय अनुप्रयोग एंटीऑक्सीडेंट गतिविधियों, प्रोलाइन और सापेक्ष जल में सुधार करता है और मैलोंडिएल्डिहाइड, हाइड्रोजन पेरोक्साइड और इलेक्ट्रोलाइट रिसाव को कम करता है, जिससे *कार्थमस टिनक्टोरियस* एल, *लिनम यूसिटाटिसिमम* एल., *कैप्सिकम एनुअम* एल, *सिसर*

एरिएटिनम एल, *ट्रिटिकम एस्टिवम* एल में नियंत्रण और तनाव दोनों स्थितियों में अनाज की उपज और तेल प्रतिशत में सुधार होता है।

२.उच्च तापमान तनाव

मक्का, गेहूं और ब्रासिका जैसे कई पौधों में गर्मी के तनाव को कम करने में ब्रासिनोस्टेरॉइड्स की भूमिका की पुष्टि हो चुकी है। ब्रासिनोस्टेरॉइड्स (१-२ μM) के पर्णीय अनुप्रयोग ने कैटलेज, पेरोक्सीडेज और सुपरऑक्साइड डिसम्यूटेज जैसे एंटीऑक्सीडेंट और कुल प्रोटीन को बढ़ाकर, NADPH ऑक्सीडेज और RBOH१ जीन की अभिव्यक्ति को बढ़ाकर और H_2O_2 के संचय को नियंत्रित करके गर्मी के तनाव (३८-४८ °C) के प्रति सहनशीलता को प्रभावी ढंग से बढ़ाया।

३. ठंड और शीतदंश का तनाव

शीत तनाव की परिस्थितियों में मक्का, *Lycopersicon esculentum* तथा *Cucumis sativus* L. जैसी फसलों में ब्रासिनोलाइड (१ मिलीग्राम प्रति लीटर) के पर्णीय अनुप्रयोग के सकारात्मक प्रभाव देखे गए हैं। इसके प्रयोग से बीज अंकुरण दर में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई। साथ ही, पौधों में एंटीऑक्सीडेंट एंजाइमों की सक्रियता बढ़ी, जिससे ऑक्सीडेटिव क्षति में कमी आई। ब्रासिनोलाइड ने प्रकाश संश्लेषण दक्षता में सुधार किया तथा प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (आरओएस) के संचय को कम किया। परिणामस्वरूप, शीतदंश तनाव के प्रति पौधों की सहनशीलता में समग्र रूप से वृद्धि हुई।

४. लवणीय तनाव:

टमाटर, गेहूं और चना में २४-एपाइब्रासिनोलाइड (१ μM) के पर्णीय अनुप्रयोग ने लवण तनाव के दुष्प्रभावों को कम किया। इसके परिणामस्वरूप प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (आरओएस) का उत्पादन घटा। साथ ही, पौधों में ग्लूटाथियोन स्तर, स्टोमेटल चालकता और प्रकाश संश्लेषण दक्षता में उल्लेखनीय सुधार देखा गया। यह बताता है कि २४-एपाइब्रासिनोलाइड पौधों की लवण सहनशीलता बढ़ाने में प्रभावी है।

५. भारी धातु तनाव

ब्रासिनोलाइड पर्णीय अनुप्रयोग से पौधों में PSII की क्वांटम उपज, PSII दक्षता, फोटोकेमिकल शमन, कुल क्लोरोफिल और कैरोटीनॉयड की मात्रा में सुधार करता है। इसके साथ ही प्रोलाइन, ग्लाइसिन बीटाइन, सापेक्ष जल सामग्री (RWC), एंटीऑक्सीडेंट एंजाइम जैसे कैटालेज़ (CAT), सुपरऑक्साइड डिसम्यूटेज़ (SOD), एस्कॉर्बेट पेरॉक्सिडेज़ (APX), ग्लूटाथियोन रिडक्टेस (GR), MDHAR (मोनोडेहाइड्रोएस्कॉर्बेट रिडक्टेस), GSH (रिड्यूस्ड ग्लूटाथियोन) और डीहाइड्रोएस्कॉर्बेट रिडक्टेस में वृद्धि होती है। यह विशेष रूप से कैडमियम, लेड और निकेल जैसे धातु विषाक्तता को कम करने में प्रभावी है। इसके अतिरिक्त, चना और सरसों में ब्रासिनोलाइड गैर-फोटोकेमिकल शमन, H_2O_2 और एमडीए के स्तर को भी घटाता है, जिससे पौधों की कुल तनाव सहनशीलता बढ़ती है।

निष्कर्ष

ब्रासिनोस्टेरॉइड्स सूखा, गर्मी, ठंड, खारेपन और भारी धातु विषाक्तता सहित प्रमुख अजैविक तनावों के खिलाफ पौधों की प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करने के लिए प्रभावी फाइटोहोर्मोन हैं। ये चुनौतीपूर्ण वातावरण में स्वस्थ और अधिक उत्पादन पैदा करते हैं। कम सांद्रता में इनके पर्णीय अनुप्रयोग ने विभिन्न फसल प्रजातियों में लाभ दिखाया है, जिससे ये जलवायु-अनुकूल कृषि के लिए व्यावहारिक उपकरण बन गए हैं। किसानों के लिए, ब्रासिनोस्टेरॉइड-आधारित फार्मूलेशन परिवर्तनशील जलवायु परिस्थितियों में उपज हानि को कम करने और फसल गुणवत्ता में सुधार करने के लिए एक लागत प्रभावी और पर्यावरण के अनुकूल दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। इसलिए, ब्रासिनोस्टेरॉइड्स को नियमित फसल प्रबंधन प्रथाओं में एकीकृत करने से स्थिर उत्पादन, बेहतर तनाव सहनशीलता और शुद्ध कृषि लाभ वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान मिल सकता है।

संदर्भ

हाफ़िज़, एम. बी., ज़हरा, एन., ज़हरा, के., रज़ा, ए., बटूल, ए., शौकत, के., और खान, एस. (२०२१). ब्रासिनोस्टेरॉइड्स: पादप वृद्धि और अजैविक तनावों में आणविक और शारीरिक प्रतिक्रियाएँ। *पादप तनाव*, २, १०००२९।

झांग, सी., बाई, एम. वाई., और चोंग, के. (२०१४). चावल में कृषि संबंधी लक्षणों का ब्रासिनोस्टेरॉइड-मध्यस्थ विनियमन। *पादप कोशिका रिपोर्ट*, ३३(५), ६८३-६९६।

वेई, ज़ेड., और ली, जे. (२०१६). ब्रासिनोस्टेरॉइड्स जड़ वृद्धि, विकास और सहजीवन को नियंत्रित करते हैं। *आणविक पादप*, ९(१), ८६-१००।

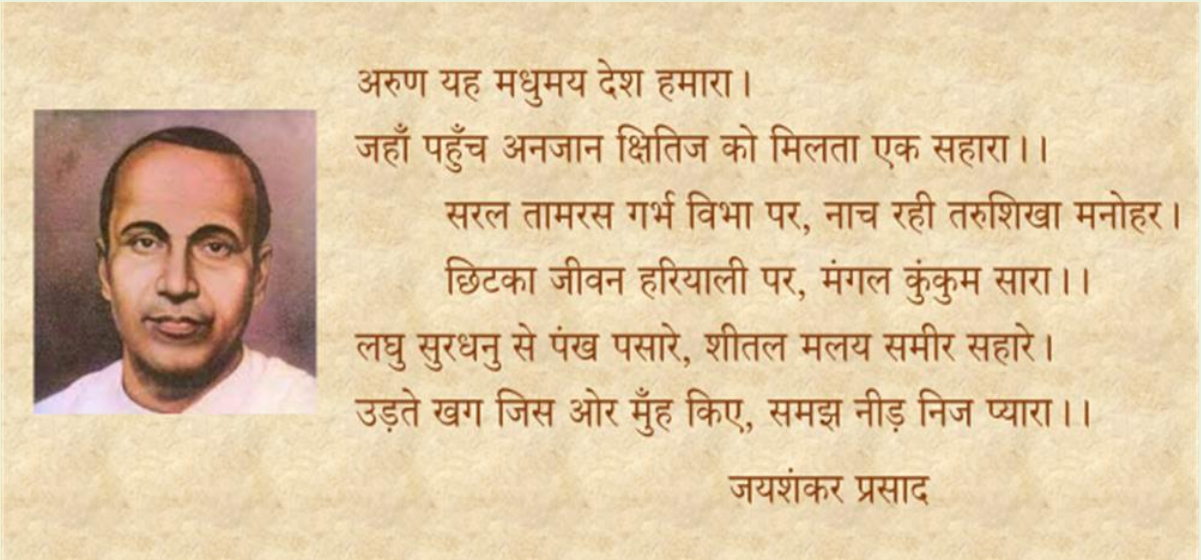

अपराजिता (*क्लिटोरिया टर्नेटिया*): एक बहुपयोगी पौधा

जगदीसन बी.[१], दीपांकर बर्मन[३], सुषमा अवाजी[२] और प्रशांतकुमार एस. हंजागी[२]

[१]भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा परिसर, नई दिल्ली – ११००१२

[२]भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

[३]भाकृअनुप-भारतीय सरसों अनुसंधान संस्थान, सेवार, भरतपुर, राजस्थान -३२१३०३

परिचय

क्लिटोरिया *टर्नेटिया* फैबेसी कुल का सदस्य है। यह इंडोनेशिया के टर्नेट द्वीप से उत्पन्न मानी जाती है और सामान्यतः डार्विन पी, एशियन पिजनविंग, बटरफ्लाई पी, कॉर्डोफान पी या ब्लूबेलवाइन के नाम से जानी जाती है। आयुर्वेद में इसे अपराजिता कहा गया है। कभी कभी लोग इसे *कन्वोल्वुलस प्रोस्ट्रेटस* के साथ भ्रमित कर लेते हैं, क्योंकि परंपरागत उपयोगों में दोनों के बीच में कुछ समानताएँ पाई जाती हैं।

विश्व के विभिन्न भागों में *क्लिटोरिया टर्नेटिया* के अनेक स्थानीय नाम प्रचलित हैं। इस पौधे को बंगाली और हिंदी में "अपराजिता", पंजाबी में "कोयल", तमिल में "क्कक्कनम" तथा तेलुगु में "डिन्टेना" कहा जाता है। पारम्परिक संस्कृत नामों में गिरिकर्णिका और विष्णुक्रांता उल्लेखनीय हैं। अंग्रेज़ी में इसे तितली-मटर, ब्लूबेलवाइन या दर्विन-पेअ; अरबी में माज़ेरियन हिदी और बसलात अल-जुहूर; चीनी में डाई-डौ; फ्रेंच में होंटे; जर्मन में ब्लाउ क्लिटोरि; पुर्तगाली में क्लिटोरिया-अज़ुल; स्पेनिश में अज़ुलेजो और ज़ापोटिलो तथा स्वीडिश में हिमलसार्ट कहा जाता है।

चित्र 1: माज़ेरियन (*क्लिटोरिया टर्नेटिया*)

यह प्रजाति एक बहुवर्षीय लता (पर्वतारोही) है, जिसकी पत्तियाँ साधारण, अंडाकार तथा हल्के गोल सिरे वाली होती हैं। बेल के रूप में यह तटस्थ तथा नम मिट्टी में उत्तम रूप से बढ़ती हैं (चित्र १)। लोग इस पौधे को इसकी गहरे नीले, आकर्षक फूलों के कारण पसंद करते हैं, जिनके केंद्र में हल्का पीला रंग होता है और जो एक -एक करके खिलते हैं।

चूँक *क्लिटोरिया टर्नेटिया* की खेती में अधिक देखभाल की आवश्यकता नहीं होती, इसलिए इसे पारिस्थितिक पुनर्स्थापन कार्यक्रमों, जैसे ऑस्ट्रेलिया में कोयला खदान क्षेत्रों के पुनर्विकास, में प्रयोग किया जाता है तथा सजावटी पौधे के रूप में भी व्यापक रूप से उगाया जाता है। इसकी जड़ों में राइजोबियल जीवाणुओं के साथ सहजीविता के कारण नाइट्रोजन-स्थिरीकरण गांठें बनती हैं, जो मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाकर उसकी उर्वरता सुधारती हैं। *क्लिटोरिया टर्नेटिया* के रासायनिक अवयवों के अध्ययन से स्टेरॉइड, एंथोसाइनिन, फ्लेवोनोल ग्लाइकोसाइड, ट्राइटरपीनोइड तथा क्लायोटाइड्स नामक ऊष्मा-प्रतिरोधी चक्रीय पेप्टाइड समूह की उपस्थिति ज्ञात हुई है।

पाक–कलात्मक उपयोग

दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक भागों में इसके फूलों का उपयोग प्राकृतिक भोजन रंग (खाद्य रंग) के रूप में किया जाता है। यूरेशियन पुर्तगाल तथा न्योन्या मिठाई पुलोट टार्टल जैसे व्यंजनों को रंग प्रदान करने के लिए इनका प्रयोग होता है। मलेशिया के केलांतन प्रान्त में पारम्परिक व्यंजन नासी केराबू का नीला रंग इसी फूल से मिलता है। थाई और बर्मी व्यंजनों में कभी-कभी फूलों को घोल बनाकर घोल में डुबोकर तला जाता है। बटरफ्लाई पी चाय सूखे *क्लिटोरिया टर्नेटिया* फूलों और लेमनग्रास को गरम पानी में डुबोकर तैयार की जाती है। यह चाय अपने pH-निर्भर रंग परिवर्तन के लिए प्रसिद्ध है; उदाहरण के लिए, नींबू रस मिलाने पर इसका नीला रंग बैंगनी में परिवर्तित हो जाता है।

थाईलैंड और वियतनाम में शहद और नींबू मिलाकर इसे गुलाबी- बैंगनी, ताज़गी देने वाला पेय बना लिया जाता है, जिसे आम तौर पर भोजन के बाद या स्पा और होटलों में परोसा जाता है। यह पेय गरम तथा ठंडे दोनों रूपों में पसंद किया जाता है। हाल के वर्षों में विशेष पेयों में भी इसके रंग-परिवर्तन गुणों का उपयोग होने लगा है; बोतल में पेय नीला दिखाई देता है, परन्तु टॉनिक जैसे अम्लीय पेय के साथ मिलाने पर गुलाबी हो जाता है। किन्तु यूरोपीय संघ में इस वर्णक को कानूनी खाद्य-घटक का दर्जा न मिलने के कारण कुछ उत्पादों को बाजार से वापस लेना पड़ा।

पारंपरिक औषधीय उपयोग

आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में *क्लिटोरिया टर्नेटिया* को स्मरण-शक्ति, तनाव और चिंता में लाभकारी माना गया है। यह अवसाद, मिर्गी तथा सामान्य शमन (बेहोश करने की क्रिया) के लिए भी उपयोग में लाई जाती है। पुष्प की प्रतीकात्मक संरचना के कारण पारम्परिक चीनी औषधि-पद्धति में इसे स्त्री प्रजनन स्वास्थ्य से संबंधित लाभों से जोड़ा जाता है।

पशु-आधारित अध्ययनों से पता चला है कि पौधे से प्राप्त उत्पाद सेरोटोनिन और एसिटाइलकोलाइन द्वारा प्रेरित व्यवहारिक परिवर्तनों को कम कर सकते हैं। अनेक प्राचीन मान्यताओं का समर्थन औषधीय-फार्माकोलॉजिकल शोधों से हुआ है, जिनके अनुसार *क्लिटोरिया टर्नेटिया* में जीवाणुरोधी, सूजनरोधी, पीड़ानाशक, ज्वरनाशक, मूत्रवर्धक, मधुमेहरोधी, एंटीऑक्सिडेंट तथा कीटनाशी जैसे बहुआयामी गुण पाए जाते हैं ।

चित्र 2: *क्लिटोरिया टर्नेटिया* का उपयोग

कीटनाशी क्रियाशीलता

इस पौधे में पाये जाने वाले चक्रीय सिस्टीन-गाँठ संरचना वाले पेप्टाइड, जिन्हें साइकलोटाइड्स कहा जाता है, अपनी अत्यधिक स्थिर बनावट के कारण कीटनाशी के रूप में कार्य करने में सक्षम होते हैं। ये संरचनात्मक रूप से अत्यधिक स्थिर होते हैं, जिससे एंजाइमी अपघटन से सुरक्षित रहते हैं और कीट-नियंत्रण में अधिक प्रभावी सिद्ध होते हैं।

इन्सेक्टिसाइड रेज़िस्टेंस एक्शन कमेटी ने यह स्वीकार किया है कि बटरफ्लाई पी से प्राप्त अर्कों का उपयोग पादप-आधारित कीटनाशकों के रूप में किया गया है। साइकलोटाइड्स कीट लार्वा की मध्यांत्र (आद्यमध्यांत्र) की श्लेष्मा झिल्ली को विघटित कर कोशिकाओं को नष्ट कर देते हैं, जिससे लार्वा की मृत्यु हो जाती है। विषाक्तता के अतिरिक्त, *क्लिटोरिया टर्नेटिया* से प्राप्त उत्पादों में कीट-भक्षकता तथा अण्डे-प्रस्वजन (अंडनिधान) को रोकने वाले गुण भी पाए गए हैं (बारबेटा इत्यादि, २००८)।

फाइटोकैमिकल प्रोफ़ाइल

प्रारम्भिक विश्लेषणों से ज्ञात हुआ है कि *क्लिटोरिया टर्नेटिया* में स्टिग्मास्ट ४ एनई ३,६ डायोन सहित टैनिन, फ्लोबटैनिन, कार्बोहाइड्रेट, सैपोनिन, ट्राइटरपीनोइड, फिनॉल, फ्लेवोनोइड, फ्लेवोनोल ग्लाइकोसाइड, प्रोटीन, एल्कलॉइड, एन्थ्राक्विनोन, एंथोसाइनिन, कार्डियक ग्लाइकोसाइड, स्टेरॉइड और वाष्पशील तेल जैसे अनेक यौगिक

उपस्थित हैं। यह पौधा कैंसर-रोधी, कोलेस्ट्रॉल-नियंत्रक, जीवाणुरोधी, परजीवीरोधी, एंटीऑक्सिडेंट तथा केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र को विनियमित करने वाली संभावित औषधीय क्रियाशीलताओं से युक्त माना जाता है।

जातीय/लोक-औषधीय उपयोग

परंपरागत रूप से इसकी जड़ों का उपयोग जलोदर, गले के संक्रमण, उदर अंगों की सूजन तथा विभिन्न त्वचा रोगों के उपचार में किया जाता रहा है। पहले जड़ को एक प्रभावी विरेचक माना जाता था, किन्तु पेट-दर्द जैसे दुष्प्रभावों के कारण अब यह उपयोग कम हो गया है। जड़ के मिश्रण को शहद और घी के साथ बच्चों को देकर बौद्धिक क्षमता बढ़ाने, मांसपेशियों के विकास तथा त्वचा के स्वास्थ्य में सुधार हेतु टॉनिक के रूप में प्रयोग किया जाता था। यह पौधा मिर्गी और मानसिक रोगों के उपचार के साथ--साथ सर्पदंश की औषधि के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है (सिकदार इत्यादि, २००८)।

विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग

- कांचीपुरम (तमिलनाडु) में इसकी जड़ का चूर्ण सिरदर्द, नेत्ररोग और सीने में जलन (heartburn) के उपचार में प्रयुक्त होता है ।
- छत्तीसगढ़ में गरम दूध में इसकी कुचली हुई जड़-छाल मिलाकर मूत्रवर्धक के रूप में और कुचले हुए बीजों को विरेचक के रूप में दिया जाता है।
- बांग्लादेश के राजशाही क्षेत्र में मूत्र संबंधी विकारों के लिए काढ़े के रूप में उपयोग किया जाता है ।
- असम में पत्ती के रस को नमक के साथ मिलाकर सिरदर्द और गैसजन्य उदर-फुलाव के लिए तथा फूल और पत्तियों को सर्पदंश में लगाया जाता है (सिकदार एवं दत्ता २००८)।
- तमिलनाडु के कोडियक्करई क्षेत्र के इरुला समुदाय द्वारा पुष्प-लेप सिरदर्द और नेत्ररोगों में तथा सम्पूर्ण पौधा सर्पदंश में उपयोग किया जाता है (रघुपति एवं न्यूमास्टर, , २००९)।
- तमिलनाडु में किए गए अध्ययनों में इसके अर्कों में वायरस-रोधी सक्रियता पाई गई है, जिससे संक्रामक रोगों के उपचार में इसके संभावित उपयोग का समर्थन मिलता है (विमलनायहन इत्यादि, २००९)।
- धारापुरम (तमिलनाडु) में बीज-चूर्ण और काली मिर्च के मिश्रण को कब्ज के उपचार में दिया जाता है त्रिपुरा के लोगों द्वारा पत्तियों और जड़ों का उपयोग मूत्र संबंधी समस्याओं के उपचार में किया जाता है (बालाकृष्णन इत्यादि, २००९)।
- उत्तर कन्नड़ (कर्नाटक) में जड़ का रस ज्वर के लिए तथा पत्तियों का उपयोग जोड़ों के दर्द, त्वचा-रोग और कान-दर्द में किया जाता है (भंडारी इत्यादि, १९९५)।

क्लिटोरिया टर्नेटिया आज भी आयुर्वेद में एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधे के रूप में प्रतिष्ठित है। इसे विशेष रूप से मस्तिष्क-संरक्षक (नयूरोप्रोटेक्टिव), तनाव-हर (एंटी-स्ट्रेस), निद्राजनक और मिर्गीरोधी गुणों के लिए जाना जाता है। विभिन्न वैज्ञानिक अध्ययनों ने इसके जैव सक्रिय यौगिकों की पहचान की है, जो तंत्रिका तंत्र की कार्यक्षमता सुधारने और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त, पौधे की विभिन्न जातियों में एंटीऑक्सीडेंट

और न्यूरोप्रोटेक्टिव गतिविधियाँ भी पाई गई हैं (गोमेज़ इत्यादि, २००३)। यह पौधा आयुर्वेदिक दवा प्रणाली में आज भी व्यापक रूप से उपयोग में लाया जाता है।

निष्कर्ष

क्लिटोरिया *टर्नेटिया* एक विशेष पौधा है जो पारम्परिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के बीच सेतु का कार्य करता है। इसकी चमकीली नीली पंखुड़ियाँ, जिनमें विशिष्ट एंथोसाइनिन उपस्थित हैं, इसे प्राकृतिक खाद्य और पेय-वर्णक के रूप में तेजी से लोकप्रिय बना रही हैं। साथ ही इसकी आसान खेती और नाइट्रोजन-स्थिरीकरण क्षमता पर्यावरणीय रूप से भी लाभकारी है। पौधे में उपस्थित फ्लेवोनोइड, ट्राइटरपीनोइड और साइकलोटाइड्स जैसे विविध जैव-सक्रिय यौगिक एंटीऑक्सिडेंट, सूजनरोधी, नॉट्रोपिक, सूक्ष्मजीवरोधी और कीटनाशी जैसी अनेक औषधीय क्रियाओं का आधार प्रदान करते हैं। सदियों से, विशेषकर आयुर्वेद और दक्षिण-पूर्व एशियाई लोक-चिकित्सा में, *क्लिटोरिया टर्नेटिया* का उपयोग स्मरण-शक्ति बढ़ाने, तनाव घटाने, संक्रमणों के उपचार, ज्वर नियंत्रण, मूत्र-स्वास्थ्य सुधारने तथा सर्पदंश तक के प्रबंधन में किया जाता रहा है, और आधुनिक शोध इन पारम्परिक उपयोगों में से अनेक की पुष्टि कर रहे हैं। समग्र रूप से, *क्लिटोरिया टर्नेटिया* एक सुंदर, बहुउपयोगी पौधा है, जो औषधि, भोजन एवं कृषि तीनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है और प्राकृतिक औषधीय व, कार्यात्मक खाद्य पदार्थों तथा सतत कृषि के लिए आशाजनक है।

संदर्भ

बारबेटा, बी.एल., मार्शल, ए.टी., गिलॉन, ए.डी., क्रैक, डी.जे., एवं एंडरसन, एम.ए. (२००८). पौधों में पाए जाने वाले साइक्लोटाइड्स द्वारा लेपिडॉप्टेरन लार्वा की मध्यांत्रीय उपकला कोशिकाओं को क्षति. प्रोसीडिंग्स ऑफ़ द नेशनल एकेडमी ऑफ़ साइंसेज़, १०५(४), १२२१–१२२५।

बालाकृष्णन, वी., प्रेमा, पी., रवींद्रन, के.सी., एवं रॉबिन्सन, जे.पी. (२००९). तमिलनाडु के धारापुरम तालुक के ग्रामीण समुदाय में नृवंश-वनस्पति अध्ययन. ग्लोबल जर्नल ऑफ़ फार्माकोलॉजी, ३(१), ८–१४।

भंडारी, एम.जे., चंद्रशेखर, के.आर., एवं कावेरीअप्पा, के.एम. (१९९५). उत्तर कन्नड़ जिले के सिद्दी समुदाय की औषधीय नृवंश-वनस्पति. जर्नल ऑफ़ एथ्नोफार्माकोलॉजी, ४७, १४९–१५८।

गोमेज़, एस.एम., एवं कलामणि, ए. (२००३). बटरफ्लाई पी (*Clitoria ternatea*): उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के लिए पोषक एवं बहुउद्देशीय चारा-दलहन—एक संक्षिप्त अवलोकन. पाकिस्तान जर्नल ऑफ़ न्यूट्रिशन, २(६), ३७४–३७९।

रघुपति, एस., एवं न्यूमास्टर, एस.जी. (२००९). तमिलनाडु, भारत के कोडियक्करई अभयारण्य में इरुला समुदाय के औषधीय पौधों संबंधी पारंपरिक ज्ञान का मूल्यांकन. जर्नल ऑफ़ एथ्नोबायोलॉजी एंड एथ्नोमेडिसिन, ५, १०.

विमलनायहन, एस., इग्नासिमुथु, एस., एवं हडसन, जे.बी. (२००९). तमिलनाडु (दक्षिण भारत) के औषधीय पौधे: प्रबल वायरस-रोधी क्रियाशीलता के स्रोत के रूप में संभावनाएँ. फार्मास्यूटिकल बायोलॉजी, ४७(५), ४२२–४२९।

सिकदार, एम., एवं दत्ता, यू. (२००८). असम के नाथ समुदाय में प्रचलित पारंपरिक फाइटोथेरैपी. एथ्नोमेडिसिन, २(१), ३९–४५।

स्वस्थ मिट्टी, स्वस्थ भोजन: भारत में पोषण संकट के समाधान के लिए प्राकृतिक खेती का महत्व

गौरी रावले, संग्राम चव्हाण, विजयसिंह काकडे, अमृत मोराडे

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

जब हम पोषण की बात करते हैं, तो हमारा ध्यान प्रायः भोजन की थाली -चावल, गेहूँ, दालें, सब्ज़ियाँ और फलों तक ही सीमित रहता है । हम थाली में रखे भोजन को देखते हैं, परंतु उस लंबी यात्रा की ओर कम ध्यान देते हैं जो मिट्टी से हमारी प्लेट तक तय करता है। विडंबना है कि विश्व का अग्रणी खाद्य उत्पादक होने के बावजूद भारत गंभीर पोषण संकट से जूझ रहा है। आर्थिक वृद्धि और भोजन की उपलब्धता में सुधार के बावजूद, जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा "अदृश्य कुपोषण" अर्थात आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे कि लौह, जिंक, विटामिन A, फोलेट और B१२ की कमी से पीड़ित है । एक प्रणालीगत समीक्षा और मे विश्लेषण के अनुसार, आधे से अधिक भारतीय लौह (५४ %) और विटामिन B१२ (५३ %) की कमी से पीड़ित हैं, जबकि लगभग १९ % लोगों में विटामिन A की कमी पाई गई है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य डेटा के अनुसार, भारत में ६७.१ % बच्चे और ५९.१ % किशोरी लड़कियां एनीमिया से प्रभावित हैं, जो इस सार्वजनिक स्वास्थ्य चुनौती के पैमाने को दर्शाता है (स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय)।

यह पोषण संबंधी अंतर केवल आहार का मामला नहीं हैं - यह कृषि प्रथाओं से गहराई से जुड़ा है। आधुनिक, रासायन-आधारित खेती मिट्टी की उर्वरता को कम कर सकती है, क्योंकि यह जैविक तत्वों और जैविक गतिविधि को घटाती है, जिससे मिट्टी की फसलों को सूक्ष्म पोषक तत्व प्रदान करने की सीमित क्षमता लोगों के आहार की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। दूसरे शब्दों में, हम जिस तरह से खेती करते हैं, हमारे खाने की गुणवत्ता पर उसका सीधा प्रभाव पड़ता है।"स्वस्थ मिट्टी → स्वस्थ फसलें → स्वस्थ लोग" हमें एक शक्तिशाली परन्तु उपेक्षित सिद्धांत की ओर ले जाता है। जैविक रूप से सक्रिय और कार्बनिक पदार्थों से समृद्ध मृदा पोषक तत्वों को बेहतर तरीके से चक्रित कर सकती है। ऐसी मिट्टी में उगाई गई फसलों में आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों की अधिक मात्रा होती है, और यह सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के अंतर को कम करने में मदद कर सकती है। मिट्टी के स्वास्थ्य को पुनर्स्थापित करने वाली कृषि पद्धतियाँ जैसे प्राकृतिक खेती पर ध्यान केंद्रित करके हम न केवल अधिक सतत कृषि प्रणालियों का निर्माण कर सकते हैं, बल्कि बेहतर सार्वजनिक स्वास्थ्य में भी योगदान दे सकते हैं।

प्राकृतिक खेती के माध्यम से मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार

प्राकृतिक खेती में किसी भी रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग नहीं किया जाता, जिससे सूक्ष्मजीवों की गतिविधि बढ़ती है और मिट्टी की जैव विविधता पुनर्स्थापित होती है। जीवामृत और बीजामृत जैसे जैविक स्रोत मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ बढ़ाते हैं, मिट्टी की संरचना को सुधारते हैं और पोषक तत्वों के चक्रण को बढ़ावा देते हैं, जिससे मिट्टी की दीर्घकालिक उर्वरता सुनिश्चित होती है।

यह भूक्षरण को रोकता है, जो भारत में एक गंभीर चिंता का विषय है, क्योंकि लगभग ३०% कृषि भूमि पहले ही रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग के कारण क्षतिग्रस्त हो चुकी है। आंध्र प्रदेश में समुदाय प्रबंधित प्राकृतिक खेती ने केवल ३–५ वर्षों में ही मृदा कार्बन में सुधार दिखाया है। मल्चिंग, कवर क्रॉपिंग और सूक्ष्मजीव आधारित मिट्टी संवर्धन जैसी तकनीकें पानी की रोकथाम को बढ़ाती हैं और सिंचाई की आवश्यकता को कम करती हैं, जिससे सूखा सहनशीलता में वृद्धि होती है। यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि भारत वैश्विक जलभंडार का २५% उपयोग करता है। आंध्र प्रदेश में वर्षा-निर्भर किसान मॉनसून पूर्व शुष्क बुवाई का पालन करके सिंचाई की मात्रा में काफी कमी कर चुके हैं।

जलवायु सहनशीलता के वास्तविक जीवन के उदाहरण

आंध्रप्रदेश के कोनसीमा जिले के नारसिपुडी गाँव में, चक्रवात मोन्था ने पारंपरिक और प्राकृतिक खेती के बीच स्पष्ट अंतर दिखाया। एक जागरुक किसान, बी. सूर्यनारायण, (जिन्होंने रासायनिकों - डाई-अमोनियम फॉस्फेट, यूरिया, एवं मिश्रित उर्वरक) का उपयोग किया, और अपने स्वर्णा धान के खेत में फसल गिरने का अनुभव किया हालांकि, उन्होंने लगभग ₹२८,००० खर्च किए और १२५–१३० किलो उर्वरक लगाया था। इसके बगल में स्थित टी. नाग महेश्वर राव, जो पिछले चार वर्षों से प्राकृतिक खेती कर रहे थे, के खेत में ९०% फसल अभी भी खड़ी रही। लंबे समय से अपनाई गई मिट्टी स्वास्थ्य प्रथाएँ- जैसे कि हर मौसम से पहले नवधान्य की खेती और घनजीवामृत का उपयोग, ने चक्रवात के प्रति फसल को सहनशील बनाया। वेस्ट गोदावरी जिले के नवुदुरु गाँव में, रासायनिक किसान वी. अदिनारायण ने स्वर्णा (MTU ७०२९) की ६ एकड़ फसल में यूरिया, मिश्रित उर्वरक, कवकनाशी और कीटनाशकों का उपयोग किया, उनकी फसल पूरी तरह झुक गई, जिससे ₹६०,०००–७०,००० का नुकसान हुआ। इसके विपरीत, बगल में स्थित प्राकृतिक खेती में, च. रवि कुमार की फसल ८०% तक सुरक्षित रही। इस तरह, प्राकृतिक खेती द्वारा बढ़ाई गई संरचनात्मक मजबूती, संतुलित विकास और मिट्टी की सक्रियता को दर्शाती है। ये क्षेत्रीय उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि प्राकृतिक खेती में निवेश न केवल जलवायु सहनशीलता को बढ़ाता है, बल्कि चरम मौसम की घटनाओं के दौरान किसानों की आय की सुरक्षा भी करता है। साथ ही, यह दृष्टिकोण सतत, सहनशील और लाभकारी कृषि की व्यावहारिक दिशा प्रदान करता है।

पौधों में पोषक तत्व उपलब्धता में सुधार

प्राकृतिक खेती स्वस्थ और जैविक रूप से सक्रिय मिट्टी बनाए रखकर फसलों में मुख्य (मैक्रो) और सूक्ष्म (माइक्रो) पोषक तत्वों के बेहतर अवशोषण को बढ़ावा देती है। इससे रासायनिक स्रोतों पर निर्भरता कम होती है और फसलें अधिक पोषक तत्वों से भरपूर और सुरक्षित बनती हैं। प्राकृतिक खेती के तहत बहु-फसल प्रणाली (मल्टी-क्रॉपिंग), अंतर-फसल प्रणाली (इंटरक्रॉपिंग) और कृषि-वन प्रणाली (एग्रोफॉरेस्ट्री) खाद्य विविधता और पोषण सुरक्षा को बढ़ाते हैं। भारत जैसे विकासशील देश में, यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ ७४.१% लोग स्वस्थ आहार का खर्च वहन नहीं कर सकते, और १६.६% लोग कुपोषित हैं (FAO, २०२३)। रासायनिक अवशेषों में कमी से खाद्य सुरक्षा में सुधार होता है, जबकि जीरो बजट प्राकृतिक खेती जैसी प्रथाएँ लागत और ऊर्जा खपत को कम करती हैं, जो छोटे और सीमांत किसानों-जो भारत की कुल कृषि जनसंख्या का ८६% हैं- के लिए सीधे लाभकारी है ।

प्राकृतिक खेती जलवायु सहनशीलता में भी योगदान देती है। यह मिट्टी में वायवीय (एरोबिक) परिस्थितियों को बनाए रखकर ग्रीनहाउस गैस जैसे - मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन को कम करती है। उदाहरण के लिए, २०१८ में पथाई और तितली चक्रवातों के दौरान आंध्र प्रदेश की प्राकृतिक खेती की फसलें पारंपरिक फसलों की तुलना में अधिक सहनशील साबित हुईं। इसी तरह, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में SRI विधियों ने मीथेन उत्सर्जन को ६२% तक कम किया।

उपभोक्ताओं के लिए स्वास्थ्य लाभ

पारंपरिक खेती से जुड़े स्वास्थ्य जोखिम लगातार बढ़ते जा रहे हैं। भोजन में पाए जाने वाले कीटनाशी अवशेष मानसिक विकार, हार्मोनल असंतुलन और कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों से जुड़े हुए हैं। केंद्रीय कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय के अनुसार, भारत में २०१७–१८ से २०२१–२२ तक सालाना लगभग ६०,००० टन रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग किया गया। उसके जवाब में, प्राकृतिक खेती एक सुरक्षित विकल्प प्रदान करती है, जो रासायनिक पदार्थों का उपयोग किए बिना खाद्य उत्पादन करती है, जिससे उपभोक्ताओं को अधिक स्वास्थ्यप्रद और पोषक तत्वों से भरपूर फसलें उपलब्ध होती हैं। प्राकृतिक खेती से उगाई गई फसलें न केवल उच्च पोषण मूल्य बनाए रखती हैं, बल्कि खाद्य सुरक्षा में भी योगदान देती हैं और दीर्घकालिक सार्वजनिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देती हैं। शहरी उपभोक्ता खाद्य सुरक्षा को अधिक प्राथमिकता दे रहे हैं, इसके लिए, प्राकृतिक खेती एक टिकाऊ, स्वास्थ्यप्रद और व्यावहारिक समाधान के रूप में उभरी है।

देशी फसलें और प्राकृतिक खेती

भारत अपनी विविध और पोषक तत्वों से समृद्ध देशी फसलों के लिए जाना जाता है, जो स्थानीय कृषि-जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल हैं। बाजरा, रागी, चौलाई, स्थानीय दालें, हल्दी और अदरक जैसी फसलें ग्रामीण समुदायों को ऐतिहासिक रूप से लौह, जिंक, कैल्शियम और विभिन्न विटामिन्स जैसी आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करती रही हैं। ये फसलें न केवल आहार में विविधता लाती हैं, बल्कि भारत में कुपोषण व भुखमरी को दूर करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हाल के दशकों में रसायन-प्रधान परंपरागत खेती ने मिट्टी की उर्वरता को प्रभावित किया और फसलों में पोषक तत्वों की मात्रा घटाई। इसके विपरीत, प्राकृतिक खेती स्वस्थ मिट्टी बनाए रखने पर केंद्रित है, जिसमें जैविक पदार्थों का समृद्धीकरण, फसल चक्र और न्यूनतम रासायनों के उपयोग शामिल हैं। यह तरीका आनुवंशिक विविधता को संरक्षित करने में भी मदद करता है, जिससे पारंपरिक, पोषक तत्वों से भरपूर फसलें खो न जाएँ। प्राकृतिक खेती स्वस्थ मृदा व बेहतर पोषक चक्र सुनिश्चित करती हैं, जिससे फसलें सूक्ष्म पोषक तत्वों हेतु अधिक समृद्ध होती हैं।

कई अध्ययन रासायनिक/परंपरागत तरीकों के मुकाबले प्राकृतिक खेती के फायदों को उजागर करते हैं। उदाहरण के लिए, रागी और बाजरा पर प्राकृतिक खेती प्रणाली में किए गए परीक्षणों से न केवल पैदावार में सुधार हुआ, बल्कि सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा भी बढ़ी। इसी प्रकार, ऑर्गेनिक (सेंद्रिय) तरीके से उगाई गईं अमरंथ और स्थानीय दालों में लोह तत्व और प्रोटीन पारंपरिक खेती के मुकाबले उच्च मात्रा देखी गई। ये उदाहरण स्पष्ट करते हैं

कि प्राकृतिक खेती केवल सतत कृषि प्रथाओं का समर्थन नहीं करती, बल्कि खाद्य गुणवत्ता और पोषण सुरक्षा को भी बढ़ाती है। देशी किस्मों को प्राकृतिक खेती के साथ जोड़कर भारत न केवल पारिस्थितिक स्थिरता सुनिश्चित कर सकता है, बल्कि जन-स्वास्थ्य की समस्याओं को भी हल कर सकता है। इन पोषक तत्वों से समृद्ध फसलों को शिक्षा, नीति समर्थन और किसानों की भागीदारी के माध्यम से बढ़ावा देकर, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को कम करने में मदद कर सकता है। अंततः, प्राकृतिक खेती स्वस्थ मिट्टी, पौष्टिक फसलें और मानव स्वास्थ्य के बीच गहरा संबंध स्थापित करके, अधिक टिकाऊ और खाद्य-सुरक्षित आत्मनिर्भर भारत हेतु एक व्यावहारिक मार्ग प्रदान कर सकता है।

मिट्टी की गुणवत्ता और मानव पोषण

जिस मिट्टी में फसल उगाई जाती है, उसकी गुणवत्ता फसलों के सीधे पोषण मूल्य पर असर डालती है । इस संबंध को समझने में दो महत्वपूर्ण अवधारणाएँ - पोषक तत्व घनत्व (nutrient density) और जैवउपलब्धता (bioavailability) सहायक हैं । पोषक तत्व घनत्व का अर्थ है किसी खाद्य पदार्थ में आवश्यक विटामिन और खनिजों की सांद्रता, जबकि जैवउपलब्धता बताती है कि ये पोषक तत्व मानव शरीर में कितनी प्रभावी तरह से अवशोषित और उपयोग किए जा सकते हैं। उच्च पोषक तत्व घनत्व और बेहतर जैवउपलब्धता वाली फसलें पर्याप्त पोषणयुक्त आहार सुनिश्चित करती हैं । अनुसंधान लगातार यह दर्शाते हैं कि जैविक रूप से सक्रिय और स्वस्थ मिट्टी में उगाई गई फसलों में आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व अधिक होते हैं। पारंपरिक और प्राकृतिक/सेंद्रिय खेती की तुलना करने वाले अध्ययन बताते हैं कि पोषक तत्व-समृद्ध मिट्टी में उगाई गई बाजरा, दालें और हरी पत्तेदार सब्जियों में प्रमुख सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा २०–३०% अधिक पाई गई। जैविक पदार्थ और सूक्ष्मजीवों से भरपूर स्वस्थ मिट्टी पोषक तत्वों के कुशल चक्र को सुनिश्चित करती है, जिससे पौधे मिनरल्स को अधिक प्रभावी रूप से अवशोषित कर पाते हैं। भारत में, जहां आयरन और विटामिन B१२ की कमी मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करती है, मिट्टी प्रबंधन के माध्यम से फसलों में पोषक तत्वों को बढ़ाकर सीधे एनीमिया और अन्य आहार-संबंधी स्वास्थ्य समस्याओं को कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यह बच्चों और किशोरों में पोषक तत्वों से भरपूर भोजन प्रतिरक्षा, संज्ञानात्मक विकास और दीर्घकालिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देता है । मिट्टी के स्वास्थ्य को मानव स्वास्थ्य से जोड़कर हम समझ सकते हैं कि सतत कृषि प्रथाएँ केवल पारिस्थितिक आवश्यकता नहीं, बल्कि एक सार्वजनिक स्वास्थ्य जरूरत हैं। प्राकृतिक खेती, फसल चक्रऔर सेंद्रिय मिट्टी सुधार जैसी विधियाँ मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बहाल करके, फसलों में पोषक तत्व घनत्व बढ़ा सकती हैं, और अंततः बेहतर मानव स्वास्थ्य में योगदान कर सकती हैं। सार में, स्वस्थ मिट्टी, पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने और बड़े पैमाने पर कुपोषण से लड़ने की दिशा में प्राकृतिक खेती एक महत्वपूर्ण कदम है।

नीति और किसान दृष्टिकोण

भारत में लगातार बढ़ रहे कुपोषण और मिट्टी की गिरती हुई उपजाऊ शक्ति को देखते हुए, राष्ट्रीय पोषण और कृषि विकास कार्यक्रमों में प्राकृतिक खेती का समावेश आवश्यक है। नीति स्तर पर इसको बढ़ावा देकर सरकारें एक ऐसा तंत्र विकसित कर सकती हैं, जहाँ सतत कृषि सीधे सार्वजनिक स्वास्थ्य में योगदान दे सके। आंध्र प्रदेश का जीरो बजट प्राकृतिक खेती कार्यक्रम और सिक्किम का जैविक खेती राज्य दोनों अभियानों ने न केवल खाद्य और पोषण सुरक्षा में सुधार किया, बल्कि पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ कृषि को भी बढ़ावा दिया। यदि, प्राकृतिक खेती को बड़े

पैमाने पर अपनाया जाए तो यह सामुदायिक और क्षेत्रीय स्तर पर लाभ कर सकता है। जबकि जैविक सामग्री का उपयोग, कंपोस्टिंग और फसल चक्र जैसी मिट्टी-संवर्धक प्रथाएं दीर्घकालिक उपजाऊ शक्ति को बढ़ाती हैं। प्राकृतिक खेती करने वाले कई किसान सतत उपज, जलवायु परिवर्तन के प्रति बेहतर सहनशीलता, और साथ ही अधिक पोषक तत्व युक्त फसलें उगा रहे हैं। इस प्रकार, जब किसानों के हितों को पोषण और पारिस्थितिक परिणामों के साथ जोड़ा जाता है, तो प्राकृतिक खेती जीविकोपार्जन, पर्यावरण और स्वास्थ्य तीनों आयामों के लिए लाभकारी है।

निष्कर्ष

स्वस्थ्य मिट्टी और मानव स्वास्थ्य के बीच स्पष्ट संबंध है। प्राकृतिक खेती के माध्यम से मिट्टी की उर्वरता को बहाल करके, और पोषक तत्वों से समृद्ध फसलों को उगाकर, भारत कुपोषण उन्मूलन और कृषि प्रणाली का निर्माण कर सकता है। इसके लिए, नीति निर्माता, कृषि वैज्ञानिक और किसान मिलकर देशभर में प्राकृतिक खेती को मुख्यधारा में लाने के लिए काम करें। प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देना केवल एक कृषि रणनीति नहीं, बल्कि यह सतत पोषण सुरक्षा और स्वस्थ राष्ट्र की दिशा में एक ठोस मार्ग है।

स्वस्थ मिट्टी, स्वस्थ बीज,

प्रकृति देती हर जरूरत की रीझ।

रसायनों से दूर, डर का नहीं काम,

पौष्टिक भोजन बने हमारे आम।

हरी सब्ज़ियाँ, अनाज रसीले,

कुपोषण दूर करें, जीवन हों उजले।

सावधानी और दिल से करें खेती का काम,

प्राकृतिक खेती है सबसे अच्छा नाम।

लवणप्रिय पौधे और उनकी बहुआयामी लवण-सहनशीलता

सुषमा अवाजी, प्रशांत कुमार एस. हंजागी, अजय कुमार सिंह

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

अक्सर पौधों को विभिन्न प्रकार के अजैविक तनावों का सामना करना पड़ता है। इन तनावों के कारण पौधे कई प्रकार की प्रतिक्रियाएँ जैसे- परासरणीय विलयों (osmolytes) का संचयन, प्रकाश-संश्लेषण की क्षमता में कमी, रंध्रों का बंद होना, तनाव-संवेदी जीनों की सक्रियता जैसे संकेत प्रदर्शित करते हैं । पौध अजैविक तनावों में लवणता सबसे गंभीर समस्या है, जो कृषि उत्पादन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। विश्वभर में लगभग ९५ करोड़ हेक्टेयर भूमि लवणता से प्रभावित है। साधारण पौधे (glycophytes) लवणता के कारण आयोनिक विषाक्तता, परासरणीय असंतुलन और ऑक्सीडेटिव तनाव से ग्रसित हो जाते हैं। अधिक नमक की वजह से पौधों में सक्रिय ऑक्सीजन कण (ROS) बनते हैं, जो लिपिड, प्रोटीन और डीएनए को क्षति पहुँचाते हैं तथा क्लोरोप्लास्ट संरचना को भी प्रभावित करते हैं, जिसके कारण प्रकाश-संश्लेषण और क्लोरोफिल की मात्रा घट जाती है। इसके विपरीत, हैलोफाइट्स वे पौधे हैं जो स्वाभाविक रूप से अधिक लवणीय परिस्थितियों में भी पनप सकते हैं। इनमें कई विशिष्ट शारीरिक, आणविक और संरचनात्मक गुण पाए जाते हैं – जैसे लवण ग्रंथियों द्वारा नमक का निष्कासन, कोशिकीय आयन संतुलन बनाए रखना, परासरणीय समायोजन, ऑक्सीडेटिव विषहरण तथा आँतरिक संरचना में परिवर्तन, आदि। हाल के वर्षों में, हैलोफाइट्स से लवण-सहनशील जीनों को अलग कर अन्य संवेदनशील फसलों में स्थानांतरित किया जा रहा है, जिससे हैलोफाइट्स के अध्ययन का महत्व और बढ़ गया है।

चित्र १ : लवणप्रिय पौधों (हैलोफाइट्स) में लवणीय परिस्थितियों के दौरान कार्यरत प्रमुख तंत्र

हैलोफाइट्स को उनके पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिक व्यवहार के आधार पर भी वर्गीकृत किया गया है। कुशमैन (२००१) ने हैलोफाइट्स को वैकल्पिक (facultative), अनिवार्य (obligatory) और आवास-उदासीन (habitat-indifferent) के रूप में वर्गीकृत किया। ग्रिगोर और टोमा (२०१०) ने और विस्तार से इन्हें मेसो-हैलोफाइट्स (प्रतिवर्ती व अपरिवर्ती) तथा चरम-हैलोफाइट्स (प्रतिवर्ती व अपरिवर्ती) के रूप में वर्गीकृत किया। इनमें से चरम हैलोफाइट्स केवल लवणीय क्षेत्रों में पाए जाते हैं और उनमें उन्नत अनुकूलन विशेषताएँ विकसित होती हैं।

पौधों में लवण-सहनशीलता के तंत्र

1. **आयन बहिष्करण (Ion Exclusion):** हैलोफाइट्स अपनी जड़ों में सोडियम के प्रवेश को कम कर देते हैं, या पोटैशियम जैसे अन्य आयनों को प्राथमिकता से ग्रहण करते हैं। इस प्रकार वे ऊतकों में सोडियम की मात्रा नियंत्रित रखते हैं।
2. **लवण का रिक्तिकाओं में संचयन (Salt Sequestration):** कई हैलोफाइट्स अतिरिक्त सोडियम को कोशिकीय रिक्तिकाओं (vacuoles) में अलग कर देते हैं। इससे कोशिका-द्रव्य (cytoplasm) सोडियम की विषाक्तता से सुरक्षित रहता है।
3. **परासरणीय समायोजन (Osmotic Adjustment):** ये पौधे प्रोलिन, ग्लाइसिन बीटेन तथा शर्करा जैसे संगत विलयों का संचयन करते हैं, जिससे जल धारण क्षमता बनी रहती है और पौधे सूखने से बच जाते हैं।
4. **प्रतिऑक्सीकारक (Antioxidant) रक्षा तंत्र:** लवणता से बनने वाले ROS को निष्क्रिय करने के लिए हैलोफाइट्स में सुपरऑक्साइड डिस्म्यूटेज, कैटालेज़, पेराॅक्सीडेज़ जैसे एंजाइम तथा एस्कॉर्बेट और ग्लूटाथियोन जैसे अणु सक्रिय होते हैं।
5. **जीन अभिव्यक्ति का नियमन (Modulation of Gene Expression):** DREB और MYB जैसे ट्रांसक्रिप्शन फैक्टर तनाव-संवेदी जीनों को सक्रिय करते हैं, जो आयन परिवहन, परासरणीय समायोजन और प्रतिऑक्सीकारक रक्षा में सहायक होते हैं।
6. **आकृतिक अनुकूलन (Morphological Adaptations):** कुछ हैलोफाइट्स में पत्तियों का क्षेत्रफल छोटा हो जाता है जिससे जल हानि कम होती है, कुछ पौधे रसीले (succulent) बन जाते हैं ताकि जल संचय कर सकें, और कुछ में विशेष लवण ग्रंथियाँ विकसित होती हैं जो अतिरिक्त नमक को पौधों से बाहर निकाल देती हैं।

निष्कर्ष

हैलोफाइट्स वे पौधे हैं जिन्होंने आणविक, जैव-रासायनिक, शारीरिक और संरचनात्मक अनुकूलन विकसित कर अत्यधिक लवणीय परिस्थितियों में भी जीवन बनाए रखा है। इनकी बहुआयामी रणनीतियाँ न केवल इनके अस्तित्व को सुनिश्चित करती हैं, बल्कि आने वाले समय में लवण-सहनशील फसल किस्मों के विकास के लिए भी एक महत्वपूर्ण आनुवंशिक स्रोत साबित हो सकती हैं। इसलिए, कृषि की स्थिरता और भविष्य की खाद्य सुरक्षा के लिए हैलोफाइट्स का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

आर (R) में बहु-स्तरीय मान-केंडल (एमके) परीक्षण द्वारा वर्षा प्रवृत्ति विश्लेषण

संतोष राठोड, प्रशांतकुमार एस. हंजगी, सुधीर कुमार मिश्र, महेश गुप्ता, निंटू मंडल
भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

वर्षा जल-विज्ञान चक्र के सबसे महत्वपूर्ण घटकों में से एक है जो कृषि, भूजल पुनर्भरण और पारिस्थितिकीय प्रणालियों के संतुलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में, जहाँ लगभग ६०% कृषि वर्षा पर निर्भर है, वर्षा परिवर्तनशीलता सीधे तौर पर फसल उत्पादकता, सिंचाई और जल प्रबंधन को प्रभावित करती है। वर्षा का स्थानिक-कालिक वितरण फसल प्रणालियों की सफलता निर्धारित करता है। पिछले कुछ दशकों में, भारत में वर्षा क्रम में महत्वपूर्ण बदलावों जैसे- मानसून में बदलाव, अत्यधिक वर्षा की घटनाओं की आवृत्ति में वृद्धि और लंबे समय तक सूखा, के संकेत मिले हैं। ये परिवर्तन जलवायु परिवर्तन से जुड़े हुए हैं और खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण आजीविका के लिए गंभीर संकट पैदा करते हैं।

इस प्रकार, प्रभावी जलवायु अनुकूलन रणनीतियों के विकास के लिए दीर्घकालिक वर्षा प्रवृत्तियों को समझना आवश्यक है। प्रवृत्ति विश्लेषण वर्षा में वृद्धि या कमी का पता लगाने में सक्षम है, जिससे नीति निर्माताओं और शोधकर्ताओं को जल विज्ञान संबंधी स्थितियों का पूर्वानुमान लगाने, जल-उपयोग दक्षता में सुधार करने और स्थायी कृषि योजना बनाने में मदद मिलती है। प्रवृत्ति विश्लेषण के लिए रैखिक समाश्रयण जैसी पारंपरिक प्राच्य विधियों का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। जबकि, मान-केंडल (एमके) परीक्षण और सेनस्लोप अनुमानक जैसी अप्राच्य विधियों का जल-जलवायु विज्ञान में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। ये विधियाँ सुदृढ़, वितरण-मुक्त और गैर-सामान्य रूप से वितरित आँकड़ों में भी एक समान प्रवृत्तियों का पता लगाने में सक्षम हैं। एमके परीक्षण किसी प्रवृत्ति की दिशा और महत्त्व की पहचान करता है, जबकि सेन-स्लोप उसका परिमाण प्रदान करता है। इन विधियों को बहु-स्तरीय विश्लेषण तक विस्तारित करके स्थानिक-कालिक विभेदनों पर वर्षा प्रवृत्ति का पता लगाना संभव हो गया है। इस लेख में, हम आर (R) का उपयोग करके बहु-स्तरीय मान-केंडल परीक्षण संबंधी एक विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे हैं। यह लेख जलवायु-प्रतिरोधी कृषि नियोजन, सिंचाई समय-निर्धारण और जल विज्ञान जोखिम प्रबंधन हेतु आर (R) के व्यवहारिक उपयोग को आरेखित करता है।

कार्यप्रणाली

बहु-स्तरीय मान-केंडल को स्थानीय और सामयिक वर्षा के आंकड़ों पर प्रयोग करने के लिए इसमें निम्नलिखित चरण शामिल हैं:

१. आंकड़ा-संग्रहण : ३० या ३० से अधिक वर्षों में विभिन्न स्टेशनों या ग्रिड बिंदुओं के वर्षा के आंकड़े।

२. पूर्व-प्रसंस्करण : लुप्त मान द्वारा आउटलायर का पता लगाना और समरूपता परीक्षण।

३. सामयिक विवरण : दैनिक वर्षा को मासिक, मौसमी और वार्षिक कालों में वितरण।

४. प्रवृत्ति का पता लगाना : प्रत्येक स्थान और समय काल के लिए मान-केंडल और सेन-स्लोप परीक्षण।

५. स्थानिक मानचित्रण : Z-सांख्यिकी और सेन-स्लोप के स्थानिक वितरण का मूल्याँकन।

६. व्याख्या : वर्षा क्रम को कृषि और जल विज्ञान संबंधी विवेचना।

गणितीय सूत्रीकरण

मान-केंडल परीक्षण किसी समय श्रृंखला में ऊर्ध्वगामी या अधोगामी प्रवृत्ति की उपस्थिति का पता लगाता है। एक डेटासेट x = (x1, x2, ..., xn) के लिए, परीक्षण सांख्यिकी S इस प्रकार दी जाती है:

$$S = \sum_{k=1}^{n-1} \sum_{j=k+1}^{n} sign(x_j - x_k)$$

जहाँ साइन(x) फ़ंक्शन है:

$$sign(x) = 1 \text{ if } x>0,\ 0 \text{ if } x=0 \text{ and } -1 \text{ if } x<0$$

शून्य परिकल्पना (कोई प्रवृत्ति नहीं) के तहत S का विचरण निम्नवत है:

$$\text{Var}(S) = \frac{n(n-1)(2n+5)}{18}$$

मानकीकृत Z सांख्यिकी की गणना इस प्रकार की जाती है:

$$Z = \frac{S-1}{\sqrt{Var(S)}} \text{ if } S>0;$$

$$Z = 0 \text{ if } S=0;$$

$$Z = \frac{S+1}{\sqrt{Var(S)}} \text{if } S<0$$

सेन-स्लोप अनुमानक सभी युग्मित ढलानों के मध्यिका के रूप में प्रवृत्ति के परिमाण की गणना करता है:

$$\beta = \text{median}\left[\frac{x_j - x_i}{j-i}\right] \ for\ all\ i < j$$

बहु-पैमाने मान-केंडल दृष्टिकोण में, ये गणनाएं प्रत्येक अस्थायी पैमाने (मासिक, मौसमी, वार्षिक) के लिए की जाती हैं:

$Z_s(i)$, $\beta_s(i)$ = मान-केंडल और स्केल s पर स्थान i के लिए सेन-स्लोप।

परिणामी मैट्रिक्स $[Z_s(i)]$ वर्षा प्रवृत्तियों की स्थानिक-कालिक संरचना प्रदान करता है।

चित्रण और R कार्यान्वयन

उदाहरण के लिए, हम ४० वर्षों में १० स्टेशनों के लिए वार्षिक वर्षा डेटा (मिलीमीटर) का उपयोग करते हैं। वार्षिक और मौसमी पैमानों पर रुझानों का पता लगाने के लिए बहु-स्तरीय मान-केंडल परीक्षण परीक्षण लागू किया जाता है।

```
# Install and Load Required Packages
packages <- c("ggplot2", "reshape2", "Kendall", "trend", "sf",
"tmap", "viridis", "plotly", "ggrepel")
install_if_missing <- function(pkg) {
  if (!requireNamespace(pkg, quietly = TRUE)) {
    install.packages(pkg, dependencies = TRUE)
  }
}
invisible(lapply(packages, install_if_missing))
lapply(packages, library, character.only = TRUE)
# Simulate Annual Rainfall Data (mm) for 8 Locations (1980–2020)
set.seed(3)
years <- 1980:2020
nYears <- length(years)
nLoc <- 8
locs <- paste0("Loc", 1:nLoc)
rain <- matrix(
  800+ rnorm(nYears * nLoc, mean = 0, sd = 60) +
    rep(seq(0, 25, length.out = nYears), each = nLoc),
  ncol = nLoc, byrow = FALSE
)
colnames(rain) <- locs
rownames(rain) <- years
# Mann–Kendall Test: Compute Tau Values for Each Location
mk_tau <- sapply(2:nLoc, function(i) Kendall::MannKendall(rain[,
i])$tau)
mk_tau <- round(mk_tau, 3)
names(mk_tau) <- locs
cat("\nMann–Kendall Tau for Each Location:\n")
print(mk_tau)
# Convert to Long Format for ggplot
df <- reshape2::melt(rain)
colnames(df) <- c("Year", "Location", "Rainfall")
df$Year <- as.numeric(as.character(df$Year))
# Multi-Line Spatio-Temporal Trend Plot
p1 <- ggplot(df, aes(x = Year, y = Rainfall, color = Location)) +
  geom_line(size = 1) +
  geom_smooth(method = "lm", se = FALSE, linewidth = 1) +
  labs(
    title = "Spatio-Temporal Rainfall Trends (Multi-Scale MK
Framework)",
    x = "Year", y = "Rainfall (mm)"
  ) +
  theme_classic(base_size = 13) +
  theme(
    plot.title = element_text(face = "bold", size = 14),
    legend.title = element_blank(),
    legend.position = "bottom"
  )
print(p1)
```

```
# Facet-Wrapped Line Plot by Location
p2 <- ggplot(df, aes(x = Year, y = Rainfall, color = Location)) +
  geom_line(size = 0.9) +
  geom_smooth(method = "lm", se = FALSE, linewidth = 1) +
  facet_wrap(~ Location, ncol = 4, scales = "free_y") +
  labs(
    title = "Spatio-Temporal Rainfall Trends by Location",
    x = "Year", y = "Rainfall (mm)"
  ) +
  theme_bw(base_size = 12) +
  theme(
    plot.title = element_text(face = "bold", size = 14),
    strip.text = element_text(face = "bold", size = 11),
    legend.position = "none"
  )
print(p2)
# Spatio-Temporal Heatmap
p3 <- ggplot(df, aes(x = Year, y = Location, fill = Rainfall)) +
  geom_tile(color = "white") +
  scale_fill_viridis_c(option = "C", name = "Rainfall (mm)") +
  labs(
    title = "Spatio-Temporal Rainfall Heatmap",
    subtitle = "Color intensity represents rainfall magnitude",
    x = "Year", y = "Location"
  ) +
  theme_minimal(base_size = 13) +
  theme(
    axis.text.x = element_text(angle = 45, hjust = 1),
    plot.title = element_text(face = "bold")
  )
print(p3)
# Bar Plot of Mann–Kendall Tau (Trend Strength)
trend_df <- data.frame(Location = names(mk_tau), MK_Tau = mk_tau)
p4 <- ggplot(trend_df, aes(x = reorder(Location, MK_Tau), y = MK_Tau, fill = MK_Tau))
+
  geom_bar(stat = "identity", width = 0.7) +
  scale_fill_gradient2(low = "red", mid = "white", high = "blue", midpoint = 0) +
  coord_flip() +
  labs(
    title = "Mann–Kendall Tau (Trend Strength) by Location",
    x = "Location", y = "MK Tau"
  ) +
  theme_classic(base_size = 13) +
  theme(plot.title = element_text(face = "bold"))
print(p4)
```

```
# Multi-Scale Mann–Kendall Test (Annual vs Monsoon)
cat("\n--- Multi-Scale Mann–Kendall Test (Annual vs Monsoon) ---\n")
rain_annual <- apply(rain, 2, sum)
rain_monsoon <- apply(rain * runif(nYears, 0.5, 1), 2, sum)
multi_results <- list(
  Annual = apply(rain, 2, function(x) trend::mk.test(x)$p.value),
  Monsoon = apply(rain * 0.6, 2, function(x) trend::mk.test(x)$p.value)
)
print(multi_results)
multi_df <- data.frame(
  Location = rep(locs, 2),
  Scale = rep(c("Annual", "Monsoon"), each = nLoc),
  p_value = c(multi_results$Annual, multi_results$Monsoon)
)
p5 <- ggplot(multi_df, aes(x = Location, y = -log10(p_value), fill = Scale)) +
  geom_bar(stat = "identity", position = position_dodge()) +
  geom_hline(yintercept = -log10(0.05), color = "red", linewidth = 0.8) +
  labs(
    title = "Multi-Scale Mann–Kendall Test Results",
    subtitle = "Comparison of trend significance (Annual vs. Monsoon)",
    x = "Location", y = expression(-log[10](p~value))
  ) +
  scale_fill_manual(values = c("steelblue", "darkorange")) +
  theme_classic(base_size = 13) +
  theme(plot.title = element_text(face = "bold"))
print(p5)
# Spatial Mann–Kendall Test and Visualization
set.seed(100)
locs_df <- data.frame(
  Location = locs,
  Lon = runif(nLoc, 77, 80),
  Lat = runif(nLoc, 15, 18)
)
spatial_results <- data.frame(
  Location = locs,
  Z_value = NA,
  p_value = NA,
  Sen_slope = NA
)
for (i in 1:nLoc) {
  mk <- trend::mk.test(rain[, i])
  sen <- trend::sens.slope(rain[, i])
  spatial_results$Z_value[i] <- round(mk$statistic, 3)
  spatial_results$p_value[i] <- round(mk$p.value, 4)
  spatial_results$Sen_slope[i] <- round(sen$estimates, 3)
}
spatial_results <- merge(locs_df, spatial_results, by = "Location")
cat("\nSpatial Mann–Kendall Test Results (Z, p-value, Sen's slope):\n")
print(spatial_results)
```

परिणाम

मान-केंडल (एमके) परीक्षण के परिणाम संबंधित दृश्यावलोकन विभिन्न स्थानों और समय-पैमानों पर वर्षा परिवर्तनशीलता का एक व्यापक आकलन प्रदान करती है। स्थानिक-कालिक आरेखण और वर्षा हीटमैप (स्थानिक-कालिक वर्षा प्रवृत्तियाँ और स्थानिक-कालिक वर्षा हीटमैप चित्र) १९८०-२०२० में वर्षा क्रम के सामयिक बदलाव को दर्शाते हैं। रेखा आरेख वर्षा की तीव्रता में वर्ष-दर-वर्ष होने वाले महत्वपूर्ण उतार-चढ़ाव और स्थान-विशिष्ट अंतरों को दर्शाते हैं, जबकि हीटमैप रंगों तीव्रताओं के माध्यम से वर्षा वितरण में दशकीय विविधताओं और बदलावों को प्रदर्शित करता है, जो स्थान और समय के साथ विषम वर्षा व्यवहार को दर्शाता है।

केंडल-टाऊ और सेन-स्लोप परीक्षण, वर्षा प्रवृत्तियों की दिशा और परिमाण दोनों को मापता है। सकारात्मक टाऊ मान वृद्धि की प्रवृत्ति दर्शाते हैं, जबकि नकारात्मक मान गिरावट दर्शाते हैं। सेन-स्लोप परिवर्तन की अनुमानित दर (मि.मी. प्रति वर्ष) प्रदान करता है। केंडल-टाऊ विभिन्न स्थानों पर वर्षा की मिश्रित प्रवृत्तियाँ दर्शाता है: कुछ स्थान (जैसे, केन्द्र १, केन्द्र २, केन्द्र ४) कमज़ोर सकारात्मक ढलान तथा अन्य (जैसे, केन्द्र ५ और केन्द्र ८) नकारात्मक ढलान के साथ मामूली कमी का संकेत देते हैं। ये परिणाम वर्षा की असमान प्रकृति इंगित करते हैं।

तालिका १. मान-केंडल और सेन-स्लोप विश्लेषणों का केन्द्रवार परिणाम

केन्द्र	देशांतर	अक्षांश	Z का मान	P का मान	सेन-स्लोप
केन्द्र 1	77.92	16.63	1.651	0.0987	1.275
केन्द्र 2	77.77	15.51	1.404	0.1603	1.149
केन्द्र 3	78.65	16.87	-0.258	0.7961	-0.175
केन्द्र 4	77.16	17.64	1.516	0.1294	1.682
केन्द्र 5	78.40	15.84	-1.404	0.1603	-1.433
केन्द्र 6	78.45	16.19	0.618	0.5367	0.594
केन्द्र 7	79.43	17.28	-0.168	0.8662	-0.164
केन्द्र 8	78.11	17.00	-0.528	0.5976	-0.387

वार्षिक और मानसून-स्तरीय वर्षा प्रवृत्तियों की तुलना एक बहु-स्तरीय मान-केंडल परीक्षण दर्शाता है। वार्षिक वर्षा अपेक्षाकृत प्रबल या अधिक बार होने वाले सकारात्मक रुझान जबकि, मानसून-स्तरीय विश्लेषण कमजोर या सांख्यिकीय रूप से महत्वहीन रुझान प्रदर्शित करते हैं। यह दर्शाता है कि वार्षिक वर्षा में स्पष्ट वृद्धि मानसूनी वर्षा में निरंतर वृद्धि के बजाय, मुख्य मानसून ऋतु के अलावा छिटपुट घटनाओं के कारण हो सकती है। ऐसे निष्कर्ष कृषि और जल विज्ञान नियोजन के लिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि कुल वार्षिक वर्षा में स्पष्ट वृद्धि का अर्थ यह नहीं है कि प्राथमिक कृषि ऋतु के दौरान वर्षा उपलब्धता में सुधार हुआ है। बबल मैप वर्षा प्रवृत्तियों का स्थानिक आयाम को दर्शाने के लिए मान-केंडल जेड-सांख्यिकी और सेन-स्लोप को संयोजित करता है जिसमें-

- **नीले बुलबुले (धनात्मक Z मान)** बढ़ती वर्षा प्रवृत्तियों को दर्शाते हैं।
- **लाल बुलबुले (ऋणात्मक Z मान)** घटती प्रवृत्तियों को दर्शाते हैं।
- सेन-स्लोप के समानुपाती बुलबुले का आकार, परिवर्तन की तीव्रता को दर्शाता है।

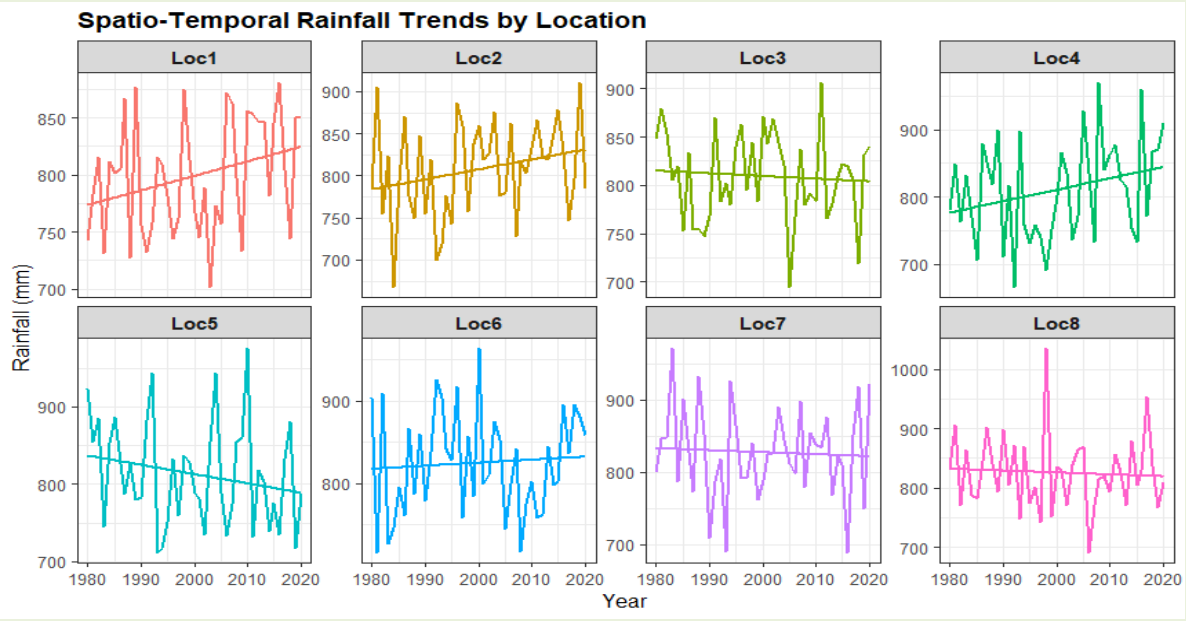

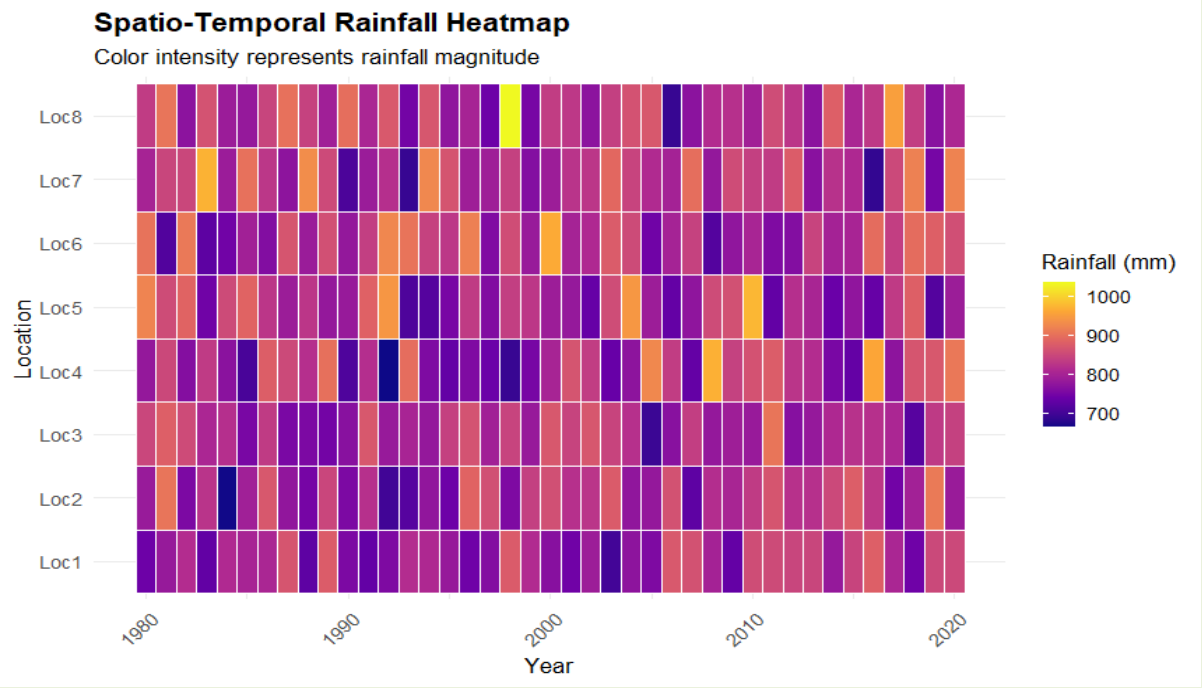

वर्षा वितरण यह दर्शाता है कि बारिश स्थानिक रूप से एक समान नहीं होती जिससे, कम वर्षा वाले क्षेत्रों में जल-तनाव तथा अधिक प्रवृत्ति वाले क्षेत्रों में बाढ़ जैसी घटनाएं हो सकती हैं। जल-प्रबंधन रणनीतियों को विकसित करने और उन क्षेत्रों की पहचान करने के लिए इन स्थानिक विरोधाभासों को समझना आवश्यक है। कुल मिलाकर, एकीकृत स्थानिक-कालिक, बहु-स्तरीय और स्थानिक मान-केंडल परीक्षण और सेन-स्लोप विश्लेषण दर्शाते हैं कि वर्षा परिवर्तनशीलता जटिल, स्थान-विशिष्ट और सामयिक है। यह संयुक्त दृष्टिकोण वर्षा परिवर्तन के परिमाण और दिशा दोनों के बारे में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, जिससे जलवायु-जोखिम मूल्यांकन, जल विज्ञान मॉडलिंग और पर्यावरण प्रबंधन में सहायता मिलती है।

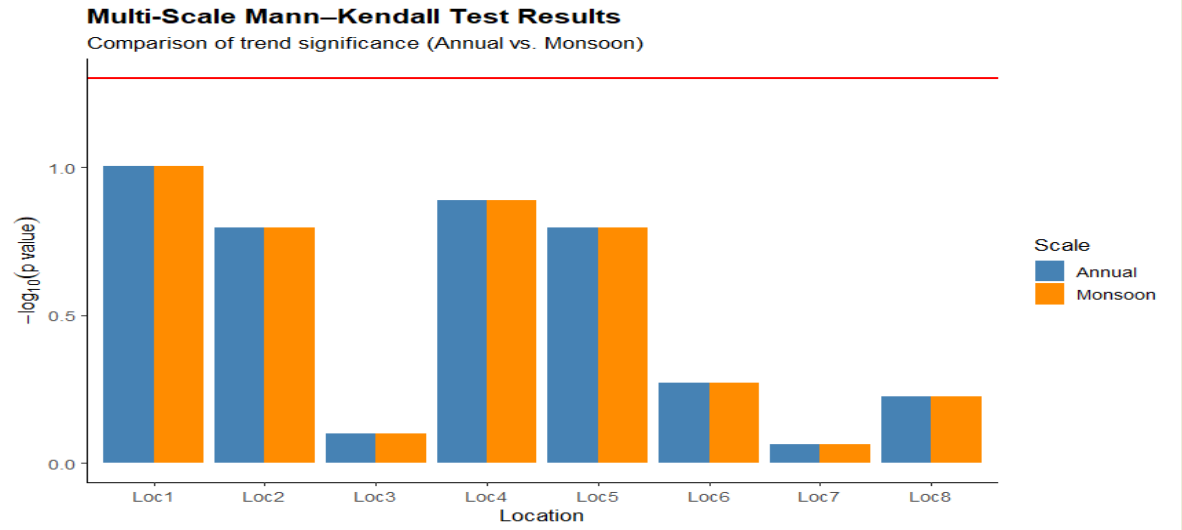

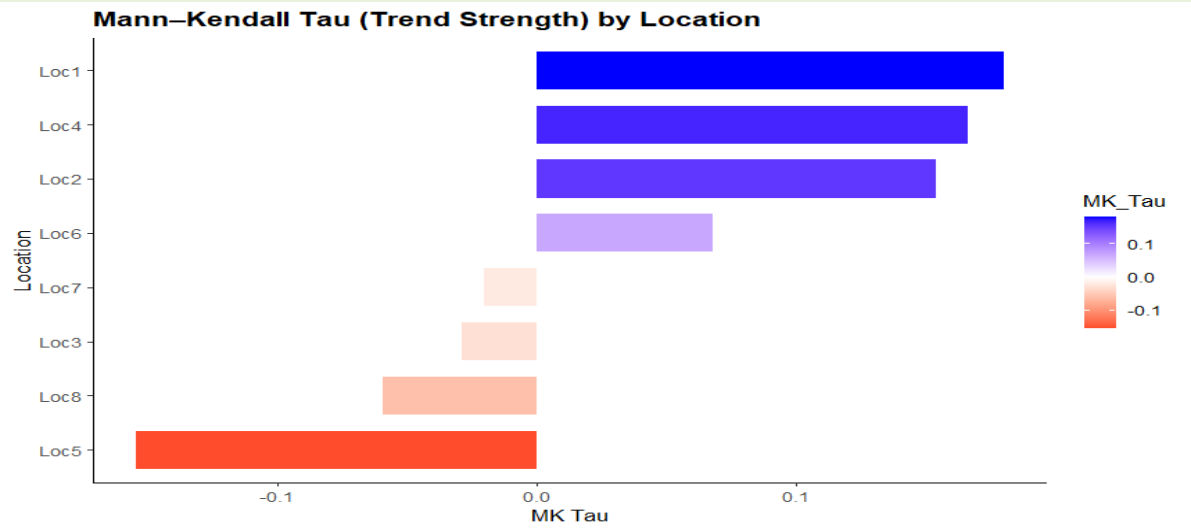

निष्कर्ष

बहु-स्तरीय मान-केंडल और सेन-स्लोप परीक्षण, स्थानिक-कालिक वर्षा प्रवृत्तियों का पता लगाने की सांख्यिकीय पद्यति है। इसे विभिन्न समय व स्थानों पर वर्षा परिवर्तनशीलता की उन बारीकियों को समझा जा सकता है जो एकल-स्तरीय विश्लेषणों में संभव नहीं होतीं। आर (R) कार्यान्वयन, स्थानिक क्रम की कुशल गणना और दृश्यता को सक्षम बनाता है। इन विश्लेषणों द्वारा कृषि में जलवायु-प्रतिरोधी रणनीतियाँ, सिंचाई संयोजन करके सूखा प्रबंधन में सुधार हो सकता है।

संदर्भ

केंडल, एम. जी. (१९७५)। रैंक सहसंबंध विधियाँ (चौथा संस्करण)। चार्ल्स ग्रिफिन।

मान, एच. बी. (१९४५)। प्रवृत्ति के विरुद्ध गैर-पैरामीट्रिक परीक्षण। इकोनोमेट्रिका, १३(३), २४५–२५९।

सेन, पी. के. (१९६८)। केंडल के टाऊ पर आधारित समाश्रयण गुणांक के अनुमान। जर्नल ऑफ़ द अमेरिकन स्टैटिस्टिकल एसोसिएशन, ६३(३२४), १३७९–१३८९।

जलवायु-अनुकूल कुक्कुट पालन: अवधारणाएँ, व्यावहारिक उपाय एवं भविष्य की दिशा

महेश गुप्ता[१],एन. पी. कुराडे[१], संतोष राठोड[१], एस. एस. पवार[१], ए. वी. निर्मले[१], संजीव कोचेवाड़[१], सचिन कुमार[२]

[१]भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

[२]भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेयरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल, हरियाणा – १३२००१

परिचय

कुक्कुट/मुर्गी पालन विश्व स्तर पर सबसे तेजी से बढ़ते पशुधन क्षेत्रों में से एक है। यह मांस और अंडे के रूप में सस्ती, उच्च गुणवत्ता वाले पशु प्रोटीन की आपूर्ति करके खाद्य और पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देता है। मुर्गी का मांस कुल वैश्विक मांस उत्पादन का लगभग ४०% है। पिछले कुछ दशकों में अंडा उत्पादन दोगुने से भी अधिक हो गया है। अल्प उत्पादन चक्र, उच्च खाद्य रूपांतरण दक्षता (feed conversion efficiency), विभिन्न स्तरों पर अपनाने की क्षमता तथा सामाजिक-सांस्कृतिक स्वीकृति के कारण पोल्ट्री क्षेत्र का तीव्र विकास हुआ है। परंतु वर्तमान परिदृश्य में जलवायु परिवर्तन जैसे- बढ़ता तापमान, लू, आर्द्रता में परिवर्तन, अनियमित वर्षा एवं चरम मौसमी घटनाएँ, कुक्कुट पालन को प्रभावित कर रही हैं। ऊष्मा-तनाव के परिणामस्वरूप पक्षियों में खाद्य सेवन में कमी, वृद्धि दर में गिरावट, अंडा उत्पादन में कमी, आंतों एवं प्रतिरक्षा-प्रणाली की कार्यक्षमता में अवनति तथा मृत्यु-दर में वृद्धि देखी जाती है। यह समस्या विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसानों तथा घर का पिछवाड़ा/आँगन आधारित कुक्कुट पालन प्रणालियों में सीमित संसाधनों और कमजोर अवसंरचना के कारण गंभीर हो जाती है।

वर्तमान जलवायु-संकट के संदर्भ में "जलवायु-अनुकूल कुक्कुट पालन" की अवधारणा एक समेकित एवं अनुकूल समाधान के रूप में उभर रही है। यह अवधारणा जलवायु-स्मार्ट कृषि के मूल सिद्धांतों पर आधारित है, जिसका उद्देश्य (i) उत्पादकता एवं किसानों की आय में सतत वृद्धि, (ii) जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन एवं लचीलापन (resilience) विकसित करना तथा (iii) प्रति इकाई उत्पादन हेतु पर्यावरणीय प्रभाव एवं ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी लाना है। जलवायु-स्मार्ट दृष्टिकोण यह भी स्पष्ट करता है कि तकनीकी सुधारों के अलावा पोषण, शारीरिक अनुकूलन, प्रबंधन, नीति और सामाजिक कारकों के एकीकृत उपयोग से टिकाऊ कुक्कुट उत्पादन संभव है। यह लेख हाल के वैज्ञानिक साहित्य और अनुप्रयुक्त क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्यों के आधार पर जलवायु अनुकूल कुक्कुट पालन की अवधारणाओं, प्रथाओं और भविष्य की दिशाओं को रेखांकित करता है।

जलवायु- अनुकूल कुक्कुट पालन की आवश्यकता

जलवायु परिवर्तन पोल्ट्री उत्पादन को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से प्रभावित करता है। उच्च तापमान से पक्षियों की ऊष्मा-नियमन क्षमता प्रभावित होती है, जिससे ऑक्सीडेटिव तनाव बढ़ता है, आंतों की संरचना व कार्यक्षमता बिगड़ती है, और रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर होती है। अधिक आर्द्रता बिछावन सामग्री (लिटर) की गुणवत्ता को खराब करती है तथा रोगजनकों, परजीवियों एवं मायकोटॉक्सिन्स की वृद्धि को बढ़ाती है। इसके अतिरिक्त,

जलवायु परिवर्तन से मक्का व सोयाबीन जैसी प्रमुख चारा फसलों की उपलब्धता और कीमतों में अस्थिरता आती है, जिससे उत्पादन लागत बढ़ जाती है। उपभोक्ताओं में भी अब पर्यावरण-अनुकूल, नैतिक एवं सतत रूप से उत्पादित पशु-उत्पादों की माँग तेजी से बढ़ रही है इससे, पारंपरिक कुक्कुट पालन के स्थान पर जलवायु-अनुकूल, संसाधन-कुशल एवं एकीकृत उत्पादन प्रणालियों को अपनाना अनिवार्य हो गया है।

चित्र १. जलवायु-अनुकूल कुक्कुट पालन का रूपरेखात्मक मॉडल।

जलवायु- अनुकूल कुक्कुट पालन के मुख्य स्तम्भ

जलवायु-अनुकूल कुक्कुट पालन तीन स्तम्भों- उत्पादकता, अनुकूलन/लचीलापन एवं पर्यावरणीय स्थिरता पर आधारित है। इन स्तम्भों को व्यवहार में लाने हेतु आवास, पोषण, आनुवंशिकी, स्वास्थ्य प्रबंधन, अपशिष्ट प्रबंधन और नीतिगत समर्थन का एकीकृत दृष्टिकोण आवश्यक है। कुक्कुट उत्पादन की दीर्घकालिक स्थिरता तभी संभव है, जब शारीरिक अनुकूलन, प्रबंधन तकनीकें और सामाजिक–आर्थिक उपाय एक-दूसरे के पूरक हों।

जलवायु-अनुकूल पोल्ट्री आवास एवं अवसंरचना

आवास पक्षियों की सहजता, कल्याण और ऊष्मा-तनाव नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जलवायु-अनुकूल आवास में शेड का पूर्व-पश्चिम दिशा में उन्मुखीकरण, बेहतर प्राकृतिक व यांत्रिक वायु-संचालन (वेंटिलेशन), ऊँची छत, ऊष्मारोधी या ऊष्मा-परावर्तक छत तथा पर्याप्त खुली पार्श्व दीवारें (साइड-वॉल ओपनिंग) शामिल हैं। व्यावसायिक प्रणालियों में टनल वेंटिलेशन, निकास पंखा (एग्ज़ॉस्ट फैन), कूलिंग पैड एवं फॉगर प्रणाली का उपयोग कर तापमान को ताप-तटस्थ सीमा (थर्मोन्यूट्रल झोन, लगभग १८–२४°C) के आसपास रखा जाता है। छोटे किसानों

के लिए कम-लागत उपाय जैसे घास-फूस या बाँस से बनी छतें, छत पर पानी छिड़काव, पेड़-पौधों से छाया तथा स्थानीय सामग्रियों का उपयोग प्रभावी सिद्ध होते हैं। वर्षा-जल संचयन एवं सौर-ऊर्जा आधारित प्रकाश एवं वेंटिलेशन प्रणालियाँ संसाधन संरक्षण और जलवायु लचीलापन को और मजबूत बनाती हैं।

ऊष्मा-तनाव में पोषण एवं जल प्रबंधन

ऊष्मा-तनाव के दौरान कुक्कुट पोषण का प्रबंधन जलवायु अनुकूल कुक्कुट पालन का मुख्य आधार है। उच्च पर्यावरणीय तापमान पर पक्षियों का खाद्य सेवन घट जाता है तथा पोषक तत्वों की उपयोग-दक्षता प्रभावित होती है। ऐसे में अधिक ऊर्जा-घनत्व वाला आहार, कम कच्चे प्रोटीन और अधिक वसा युक्त फीड उपयोगी सिद्ध होता है, जिससे शरीर में ऊष्मा उत्पादन कम होता है। विटामिन C एवं E, सेलेनियम, इलेक्ट्रोलाइट्स, प्रोबायोटिक्स, प्रीबायोटिक्स, पोस्टबायोटिक्स एवं फाइटोजेनिक एडिटिव्स का उपयोग ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करता है और प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ बनाता है। जलवायु-अनुकूल पोषण का एक महत्वपूर्ण घटक वैकल्पिक एवं सतत खाद्य स्रोत जैसे- कृषि-उपोत्पाद, तेलबीज-खली, फल-सब्ज़ी अपशिष्ट, पौध-आधारित फीड, कीट-आधारित प्रोटीन, आदि हैं। ऐसे स्रोत न केवल लागत कम करते हैं, बल्कि चक्रीय अर्थव्यवस्था (circular economy) को भी बढ़ावा देते हैं। साथ ही, ऊष्मा-तनाव के दौरान स्वच्छ एवं ठंडे जल की निरंतर उपलब्धता अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि थोड़े समय के लिए भी पानी की कमी मृत्यु-दर को बढ़ा सकती है।

आनुवंशिक संसाधन एवं जलवायु-अनुकूल प्रजनन

जलवायु- अनुकूल कुक्कुट पालन में आनुवंशिक सुधार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। उच्च उत्पादकता वाली व्यावसायिक नस्लें अक्सर पर्यावरणीय तनाव के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं, जबकि देशी नस्लों में ताप-सहिष्णुता, रोग-प्रतिरोधन एवं सीमित संसाधन में जीवित रहने की क्षमता अधिक पाई जाती है। वनराजा, ग्रामप्रिया, असील, कड़कनाथ जैसी नस्लें कठिन जलवायु परिस्थितियों में अपेक्षाकृत बेहतर प्रदर्शन करती हैं। जलवायु- अनुकूल प्रजनन रणनीतियों में इन नस्लों का संरक्षण, चयनात्मक प्रजनन और आधुनिक जीनोमिक तकनीकों द्वारा ताप-सहिष्णुता, रोग-प्रतिरोधकता और फीड दक्षता जैसे गुणों को सुधारना शामिल है।

स्वास्थ्य, जैव-सुरक्षा और पक्षी-कल्याण

जलवायु तनाव पक्षियों की प्रतिरक्षा क्षमता को कमजोर कर देता है, जिससे संक्रामक रोगों का जोखिम बढ़ जाता है और उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए जलवायु- अनुकूल कुक्कुट प्रणालियों में जैव-सुरक्षा, नियमित टीकाकरण, स्वच्छता, नियंत्रित प्रवेश, कृंतक-नियंत्रण और रोग निगरानी पर विशेष ध्यान दिया जाता है। पक्षी-कल्याण इस प्रणाली का अनिवार्य घटक है, जिसमें अच्छा वेंटिलेशन, संतुलित पक्षी घनत्व, उचित लिटर प्रबंधन और तनाव-मुक्त वातावरण शामिल हैं। ये उपाय पक्षियों के स्वास्थ्य और मनोवैज्ञानिक कल्याण के लिए आवश्यक हैं। साथ ही, यह उत्पादन दक्षता और उत्पाद की गुणवत्ता को भी बढ़ाता है। इस प्रकार, जलवायु- अनुकूल प्रबंधन से पोल्ट्री उत्पादन अधिक टिकाऊ, लाभकारी और पर्यावरण अनुकूल बनता है।

अपशिष्ट, लिटर एवं पर्यावरण प्रबंधन

अन्य पशुधन क्षेत्रों की तुलना में मुर्गियों का कार्बन फुटप्रिंट कम है, फिर भी बिछावन (लिटर) एवं अपशिष्ट प्रबंधन से जुड़े उत्सर्जन महत्वपूर्ण हैं। कम्पोस्टिंग, वर्मी-कम्पोस्टिंग, बायोगैस उत्पादन एवं जैव उर्वरक का उपयोग कर अपशिष्ट को संसाधन में बदला जाता है। फसल-पशुधन-कुक्कुट पद्यतियों के एकीकरण से पोषक तत्वों का कुशल पुनर्चक्रण होता है-जहाँ मुर्गियों की खाद मिट्टी की उर्वरता बढ़ाती है और फसल अवशेष चारा बनते हैं। यह प्रणाली पर्यावरणीय दुष्प्रभाव को कम करके टिकाऊ उत्पादन को बढ़ावा देती है।

सामाजिक-आर्थिक एवं नीतिगत आयाम

जलवायु- अनुकूल कुक्कुट पालन की सफलता के लिए अनुकूलन नीतियाँ, संस्थागत समर्थन और क्षमता-विकास आवश्यक हैं। किसानों को प्रशिक्षण, ऋण, बीमा, जलवायु-अनुकूल अवसंरचना एवं नवीकरणीय ऊर्जा प्रोत्साहन उपलब्ध कराना आवश्यक है। डिजिटल प्लेटफॉर्म, मोबाइल ऐप्स और मौसम-आधारित परामर्श सेवाएँ निर्णय-निर्माण को बेहतर बनाती हैं। ग्रामीण एवं विकासशील क्षेत्रों में मुर्गी पालन में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। महिलाओं को तकनीक, प्रशिक्षण और वित्तीय मदद देकर आजीविका, पोषण सुरक्षा और सामाजिक सशक्तीकरण को बढ़ावा दिया जा सकता है।

भविष्य की शोध दिशा

भविष्य में जलवायु-अनुकूल कुक्कुट पालन को अधिक प्रभावी बनाने हेतु अनुसंधान का झुकाव ऊष्मा-तनाव की जैविकी तथा उसके आंत–मस्तिष्क–प्रतिरक्षा अक्ष पर प्रभावों की गहन समझ पर होना चाहिए। लक्षित न्यूट्रास्यूटिकल्स जैसे- प्रोबायोटिक्स, पोस्टबायोटिक्स और फाइटोजेनिक यौगिकों की क्रियाविधि, मात्रा और दीर्घकालिक सुरक्षा का वैज्ञानिक मूल्यांकन आवश्यक है। उष्ण-सहिष्णु और रोग-प्रतिरोधी नस्लों के लिए आनुवंशिक एवं जीनोमिक दृष्टिकोणों को चयनात्मक प्रजनन से जोड़ा जाना चाहिए। इसके साथ-साथ कम-लागत डिजिटल एवं उत्कृष्ट कुक्कुट तकनीकों का विकास, विशेषकर छोटे और सीमांत किसानों के लिए, महत्वपूर्ण होगा। विभिन्न उत्पादन प्रणालियों का जीवन-चक्र मूल्यांकन (LCA) कर उनके पर्यावरणीय प्रभावों की तुलना भी आवश्यक है। अंततः, सामाजिक-आर्थिक अनुसंधान के माध्यम से किसान अंगीकरण, नीति प्रभाव और क्षेत्र-विशिष्ट जलवायु-अनुकूल उत्पादन तरीके विकसित करना भविष्य की प्रमुख अनुसंधान प्राथमिकताएँ होंगी।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन कुक्कुट पालन के लिए एक गंभीर चुनौती बन चुका है, जिसके परिणामस्वरूप ऊष्मा-तनाव, जल एवं चारा संसाधनों की अनिश्चितता, रोग जोखिम में वृद्धि तथा उत्पादन दक्षता में गिरावट देखी जा रही है। पारंपरिक कुक्कुट पालन प्रणालियाँ इन बदलती परिस्थितियों के प्रति सीमित अनुकूलन क्षमता रखती हैं। ऐसे परिदृश्य में जलवायु-अनुकूल कुक्कुट पालन सतत, लचीला और वैज्ञानिक समाधान प्रदान करता है। जलवायु-अनुकूल कुक्कुट पालन एक समेकित प्रणाली है, जिसमें जलवायु-अनुकूल आवास, ऊष्मा-तनाव-आधारित पोषण प्रबंधन, उष्ण-

सहिष्णु एवं रोग-प्रतिरोधी नस्लें, सुदृढ़ स्वास्थ्य एवं जैव-सुरक्षा उपाय तथा कुशल अपशिष्ट प्रबंधन शामिल हैं। इन घटकों का सामूहिक कार्यान्वयन न केवल कुक्कुट उत्पादकता और लाभप्रदता को बनाए रखता है, अपितु पर्यावरणीय प्रभाव को भी कम करता है। अंततः जलवायु-अनुकूल कुक्कुट पालन न केवल उत्पादन और आर्थिक स्थिरता को सुनिश्चित करता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, संसाधन दक्षता और ग्रामीण आजीविका सुदृढ़ीकरण में भी योगदान देता है। उचित नीति-समर्थन, अनुसंधान एवं विस्तार सेवाओं के साथ इसके व्यापक स्तर पर अंगीकरण से बदलते जलवायु परिदृश्य में कुक्कुट क्षेत्र की दीर्घकालीन स्थिरता और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।

सन्दर्भ

शुक्ला, पी.के. एवं भट्टाचार्य, ए. (२०२५). *जलवायु-स्मार्ट कुक्कुट पालन: बदलते पर्यावरण के अनुरूप अनुकूलन.* एस.आर. पब्लिकेशन्स, २५ जुलाई २०२५.

एनकोबेला, एन. एवं वेपेनर, एम. (२०२१). *जलवायु-स्मार्ट कुक्कुट उत्पादन.* कृषि अनुसंधान परिषद, दक्षिण अफ्रीका. रिपोर्ट संख्या ११: ४६३–४९३.

बिस्ट, आर.बी., बिस्ट, के., पौडेल, एस., सुबेदी, डी., यांग, एक्स., पनेरु, बी., मणि, एस., वांग, डी. एवं चाई, एल. (२०२४). सतत कुक्कुट पालन प्रथाएँ: वर्तमान रणनीतियों एवं भावी संभावनाओं की समालोचनात्मक समीक्षा. *पोल्ट्री साइंस*, १०३(१२): १०४२९५.

व्लाइकु, पी.ए., उन्टिया, ए.ई. एवं ओआन्सिया, ए.जी. (२०२४). शून्य भूख प्राप्त करने और खाद्य गुणवत्ता में सुधार हेतु सतत कुक्कुट पोषण रणनीतियाँ. *एग्रीकल्चर*, १४(१०): १८११.

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान,
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहिं सुजान।

रहिमन खेती कीजिए, उत्तम मध्यम नीच,
फल बिन बीज न ऊबरै, बीज बिन फल न दीच।
- रहीम

अल्प-अवधि दलहनी फसलों के माध्यम से भारत की धान-परती भूमि का उपयोग

रफ़ात सुल्ताना, बसवराज पाटिल, बोरैया के. एम., निलेश जोशी
भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

विविध कृषि-पर्यावरणीय परिस्थितियों और अनेक फसल ऋतुओं के बावजूद भारत में दलहन उत्पादन की कमी बनी हुई है। दलहन, मुख्यतः शाकाहारी जनसंख्या के लिए प्रोटीन का प्रमुख स्रोत हैं, किंतु उनकी उपलब्धता अपर्याप्त तथा निरंतर महँगी होती जा रही है। पिछले दो दशकों में भारत के दलहन आयात में लगभग दस गुना वृद्धि हुई है, जो घरेलू उत्पादन और मांग के बीच बढ़ते अंतर को दर्शाता है। इस आयात निर्भरता को कम करना आत्मनिर्भर भारत की व्यापक परिकल्पना के अंतर्गत एक राष्ट्रीय प्राथमिकता बन चुका है। भारतीय कृषि की एक प्रमुख समस्या अनाज-प्रधान फसल प्रणालियों विशेषकर धान व गेहूँ का वर्चस्व है, जिसके कारण दलहनों को प्रायः वर्षा-आधारित, कम निवेश वाली एवं जोखिमपूर्ण परिस्थितियों तक सीमित कर दिया गया है। यह प्रवृत्ति पूर्वी भारत में अधिक स्पष्ट है, जहाँ हरित क्रांति के दौरान धान की खेती के विस्तार से खरीफ के बाद विशाल क्षेत्र परती रह जाते हैं। विलंबित बुवाई, कम नमी तथा उपयुक्त फसल विकल्पों के अभाव के कारण ये क्षेत्र राष्ट्रीय दलहन संवर्धन, जैसे राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन–दलहन, के उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधक हैं। धान-परती क्षेत्र दलहन विस्तार और विविधीकरण के लिए एक रणनीतिक संसाधन हैं। अवशिष्ट मृदा नमी, उपजाऊ जलोढ़ मृदाएँ और अनुकूल शीतकालीन तापमान इन्हें अल्प-अवधि दलहनी फसलों के लिए स्वाभाविक रूप से उपयुक्त बनाते हैं। किंतु शीघ्र परिपक्व किस्मों की कमी, कमजोर बीज आपूर्ति प्रणालियाँ, समय पर बुवाई हेतु अपर्याप्त यंत्रीकरण तथा अपर्याप्त पौध संरक्षण प्रबंधन के कारण इनकी क्षमता अभी भी अप्रयुक्त है। इन कमियों को दूर करना राष्ट्रीय पौध स्वास्थ्य प्रबंधन ढाँचे के उद्देश्यों के अनुरूप है, जो सीमांत परिस्थितियों में निवारक एवं पर्यावरण-अनुकूल रणनीतियों पर बल देता है।

पूर्वी भारत में दलहन उत्पादन परिदृश्य

भारत में खरीफ दलहन अधिकतर वर्षा-आधारित परिस्थितियों में उगायी जाती हैं, जिससे उनकी उत्पादकता वर्षा की मात्रा, वितरण तथा मौसमी अनिश्चितताओं पर निर्भर होती है। पूर्वी भारत में यह निर्भरता विशेष रूप से अधिक है। यद्यपि पिछले दशकों में कई उन्नत किस्में विकसित की गई हैं, फिर भी जलवायु अनिश्चितता, उपयुक्त प्रबंधन के अभाव तथा सीमित तकनीकी अंगीकरण के कारण उत्पादकता में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है। चना भारत की सबसे महत्वपूर्ण दलहनी फसल है, जो कुल दलहन क्षेत्रफल का लगभग ३९% भाग घेरती है, इसके बाद अरहर (२१%), मूंग (११%), उड़द (१०%), मसूर (७%) और मटर (५%) का स्थान आता है। यद्यपि मध्य और दक्षिणी भारत दलहन उत्पादन में अग्रणी हैं, पूर्वी भारत की भागीदारी अपेक्षाकृत कम बनी हुई है, जबकि वहाँ पर्याप्त कृषि-पर्यावरणीय क्षमता विद्यमान है। पूर्वी भारत में दलहन खेती मुख्यतः कम निवेश, निर्वाह-आधारित कृषि प्रणाली

के अंतर्गत की जाती है। फिर भी, दलहन फसलें धान-आधारित प्रणालियों में अवशिष्ट नमी, मेड़ों तथा धान-परती भूमि के माध्यम से समावेशन की व्यापक संभावनाएँ प्रदान करती हैं। किंतु अनाज-प्रधान नीतियाँ, अपर्याप्त मूल्य प्रोत्साहन, कमजोर बाजार संपर्क और गुणवत्तापूर्ण बीजों की सीमित उपलब्धता जैसी सामाजिक–आर्थिक बाधाएँ दलहन विस्तार को सीमित करती हैं।

अल्प-अवधि दलहन: आत्मनिर्भर भारत एवं मिशन–दलहन का रणनीतिक आधार

दलहनों के जीवन चक्र में कमी लाना पूर्वी भारत में दलहन क्षेत्र और उत्पादकता की कमी को दूर करने हेतु एक निर्णायक हस्तक्षेप है। अल्प-अवधि दलहन संकीर्ण बुवाई अवधि में समायोजित हो जाते हैं, अजैविक तनाव से बचते हैं तथा सिंचित भूमि के साथ प्रतिस्पर्धा किए बिना सतत सघनीकरण को संभव बनाते हैं, जो मिशन-दलहन के प्रमुख उद्देश्य हैं। इन फसलों का अल्प जीवन चक्र कीटों एवं रोगजनकों के जीवन चक्र को भी बाधित करता है, जिससे "रोग-परिहार" के सिद्धांत के माध्यम से उपज हानि कम होती है। साथ ही, ये किस्में प्रजनन चक्र को तेज करती हैं और किस्म प्रतिस्थापन दर को बढ़ाती हैं।

अरहर

अरहर की पारंपरिक रूप से उगाई जाने वाली दीर्घ-अवधि किस्में पूर्वी भारत की परिस्थितियों में अनेक समस्याओं से ग्रस्त हैं। इन किस्मों का जीवन चक्र लंबा होने के कारण ये फसल की अंतिम अवस्था में आने वाले सूखे, कम तापमान तथा कई क्षेत्रों में जलभराव के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हो जाती हैं। परिणामस्वरूप, फूल गिरना, फली निर्माण में कमी और अंततः उपज हानि जैसी समस्याएँ सामान्य रूप से देखी जाती हैं। धान-परती क्षेत्रों में सीमित समय और अवशिष्ट नमी की उपलब्धता के कारण दीर्घ-अवधि अरहर किस्में व्यावहारिक नहीं रह जातीं। इस संदर्भ में अल्प-अवधि, तनाव-सहिष्णु अरहर किस्मों का विकास अत्यंत रणनीतिक महत्व रखता है। ऐसी किस्में न केवल अंतिम चरण के सूखे और तापीय तनाव से बच निकलती हैं, बल्कि कम समय में स्थिर उपज प्रदान करने में भी सक्षम होती हैं। यह दृष्टिकोण राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन–दलहन के उत्पादकता संवर्धन और आयात-निर्भरता घटाने के उद्देश्यों के पूर्णतः अनुरूप है।

चना

चना भारत की सबसे महत्वपूर्ण रबी दलहनी फसल है और धान-परती क्षेत्रों में इसके विस्तार की व्यापक संभावनाएँ विद्यमान हैं। धान कटाई के बाद उपलब्ध अवशिष्ट मृदा नमी चना की प्रारंभिक वृद्धि के लिए पर्याप्त होती है, किंतु फसल के पुष्पन एवं दाना भरने की अवस्था में बढ़ता तापमान और घटती मृदा नमी प्रमुख बाधा बन जाती है। इसके अतिरिक्त, फ्यूजेरियम विल्ट तथा अन्य मृदा-जनित रोग चना उत्पादन में गंभीर नुकसान पहुँचाते हैं। देर से बोई गई किस्में अक्सर अंतिम चरण के ऊष्मा एवं सूखे तनाव का सामना नहीं कर पातीं, जिससे उपज में भारी गिरावट आती है। ऐसे में शीघ्र पकने वाली, ऊष्मा-सहिष्णु और रोग-प्रतिरोधी चना किस्मों का विकास और प्रसार, धान-परती क्षेत्रों के प्रभावी उपयोग के लिए अनिवार्य है। यह रणनीति न केवल परती भूमि को उत्पादक संपत्ति में परिवर्तित करती है, बल्कि दलहन विस्तार और उत्पादकता स्थिरीकरण के लक्ष्यों को भी सुदृढ़ करती है।

मसूर

मसूर एक ऐसी दलहनी फसल है जो अपेक्षाकृत कम और अवशिष्ट मृदा नमी परिस्थितियों में उत्कृष्ट प्रदर्शन करती है। पूर्वी भारत के अनेक भागों में, जहाँ सिंचाई सुविधाएँ सीमित हैं, मसूर धान-परती प्रणालियों के लिए एक उपयुक्त फसल विकल्प बनकर उभरती है। तथापि, पारंपरिक किस्में अक्सर लंबी अवधि की होने के कारण अंतिम दौर में तापीय तनाव एवं रोगों से प्रभावित हो जाती हैं। शीघ्र पकने वाली और तनाव-सहिष्णु मसूर किस्में इन समस्याओं को प्रभावी रूप से दूर कर सकती हैं। ऐसी किस्में कम समय में स्थिर उपज देती हैं और घरेलू स्तर पर सुलभ, किफायती प्रोटीन की उपलब्धता बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान करती हैं। इस प्रकार, मसूर का संवर्धन न केवल दलहन मिशन के उद्देश्यों की प्राप्ति, बल्कि पोषण सुरक्षा की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

तालिका १: विभिन्न दलहनी फसलों की सामान्य एवं अल्प-अवधि अवधि की तुलना

दलहनी फसल	सामान्य अवधि (दिनों में)	अल्प-अवधि (दिनों में)
अरहर (Pigeonpea)	२७०	१२०
चना (Chickpea)	१६०	७५
मूंग (Mungbean)	१००–१२०	६०–६५
उड़द (Urdbean)	१००–१२०	६५–७०
मसूर (Lentil)	१००–११०	८०–९०

मूंग एवं उड़द

मूंग और उड़द भी अल्प-अवधि दलहनी फसलें हैं, जो फसल विविधीकरण और कृषि सघनीकरण की धुरी मानी जाती हैं। इन फसलों की अल्प अवधि इन्हें धान-आधारित प्रणालियों में द्वितीय या तृतीय फसल के रूप में शामिल करने की अनुमति देती है। किंतु बदलती जलवायु परिस्थितियों में, पारंपरिक किस्में प्रकाश एवं तापमान के प्रति संवेदनशील होने के कारण अस्थिर उपज देती हैं। इसके अतिरिक्त, मूंग एवं उड़द में पीला मोज़ेक विषाणु रोग जैसी व्यापक समस्याएँ हैं। प्रकाश–ताप-असंवेदनशील तथा रोग-प्रतिरोधी किस्मों का विकास इन फसलों के स्थिर उत्पादन के लिए अत्यंत आवश्यक है। ऐसी किस्में न केवल जलवायु जोखिम को कम करती हैं, बल्कि मृदा उर्वरता सुधार, फसल तीव्रता वृद्धि और किसान आय संवर्धन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

भविष्य की दिशा

पूर्वी भारत की धान-परती एवं वर्षा-आधारित प्रणालियों में अल्प-अवधि दलहनी फ़सलों का समावेशन आत्मनिर्भर भारत और दलहन मिशन के उद्देश्यों का प्रभावी संगम है। लक्षित प्रजनन, सुदृढ़ बीज प्रणालियाँ, सहायक नीतियाँ तथा किसान-केंद्रित विस्तार सेवाएँ मिलकर इन अप्रयुक्त कृषि-पारितंत्रों को सतत विकास के रूप में बदल सकती हैं। इससे न केवल दलहन आयात पर निर्भरता घटेगी, बल्कि पोषण सुरक्षा, किसान आय और दीर्घकालिक कृषि व्यवसाय भी सुदृढ़ होगा।

भारतीय उष्णकटिबंधीय मत्स्य संसाधन प्रबंधन में पर्यावरणीय डीएनए (eDNA) तकनीक

मुकेश भेंडारकर

भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-४१३ ११५

परिचय

पृथ्वी का लगभग ७१% हिस्सा जलमग्न है, और यह विशाल नीला विस्तार केवल महासागरों तक सीमित नहीं है, बल्कि नदियों, झीलों, जलाशयों, आर्द्रभूमियों और अंतर्देशीय जल निकायों तक फैला हुआ है। यह समूचा जलीय संसार न केवल जैव विविधता का भंडार है, बल्कि मानव सभ्यता के अस्तित्व का एक अनिवार्य आधार भी है। विशेष रूप से उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में, जहाँ भारत जैसे देश स्थित हैं, मत्स्य पालन एवं मत्स्य संसाधन प्रबंधन केवल एक उद्योग नहीं, बल्कि करोड़ों लोगों की आजीविका, संस्कृति, पोषण और खाद्य सुरक्षा की रीढ़ है। समुद्र के साथ-साथ नदियाँ, झीलें और बड़े जलाशय भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था, स्थानीय रोजगार और प्रोटीन आपूर्ति में समान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जलीय जीवन की जैव विविधता को समझना बहुत मुश्किल कार्य है। हम जाल डालते हैं, जो फँस गया उसे दर्ज कर लेते हैं, और जो प्रजातियाँ जाल से बच जाती हैं, विशेषकर दुर्लभ, संकटग्रस्त या आक्रामक (Invasive) प्रजातियाँ, वे हमारी निगरानी से बाहर रह जाती हैं। यह समस्या अंतर्देशीय जल निकायों में और भी गंभीर हो जाती है, जहाँ पारंपरिक सैम्पलिंग विधियाँ सीमित, श्रमसाध्य और कई बार पारिस्थितिकी के लिए हानिकारक होती हैं। पारंपरिक निगरानी विधियां, जैसे कि बॉटम ट्रॉलिंग (Bottom Trawling) या विजुअल सेंसस (Visual Census), अक्सर महंगी, श्रम-साध्य और कई बार पारिस्थितिक तंत्र के लिए विनाशकारी होती हैं। पर्यावरणीय डीएनए (Environmental DNA – eDNA) तकनीक से हम पानी की केवल एक बूंद से यह जान सकते है कि नदी, झील या जलाशय में कौन-कौन सी मछलियाँ, झींगे, उभयचर या अन्य जलीय जीव मौजूद हैं। यह तकनीक समुद्री पारिस्थितिक तंत्रों के साथ-साथ नदियों, झीलों और जलाशयों में भी जैव विविधता की निगरानी, आक्रामक प्रजातियों की प्रारंभिक पहचान, संकटग्रस्त प्रजातियों के संरक्षण और वैज्ञानिक-आधारित मत्स्य प्रबंधन के लिए एक क्रांतिकारी परिवर्तन लेकर आ रही है।

पर्यावरणीय डीएनए (eDNA) का विज्ञान

हर जीवित प्राणी चाहे वह महासागर में तैरती एक विशाल ब्लू व्हेल हो, किसी नदी में पाई जाने वाली प्रवासी मछली, जलाशय की तली में रहने वाला कैटफ़िश हो या फिर एक सूक्ष्म प्लवक (Plankton) अपने आसपास के पर्यावरण में अपने अस्तित्व के आनुवंशिक और रासायनिक निशान छोड़ता है। जब मछलियाँ और अन्य जलीय जीव पानी में गतिशील होते हैं, तो वे अपनी त्वचा की कोशिकाएँ (skin cells), श्लेष्मा (mucus), मलमूत्र (faeces/excreta), मूत्र तथा प्रजनन से जुड़ी कोशिकाएँ (gametes) छोड़ते हैं। इन सभी जैविक अवशेषों में डीएनए मौजूद होता है, जिन्हें पर्यावरणीय डीएनए (Environmental DNA – eDNA) कहा जाता है।

आज विज्ञान यह स्वीकार कर चुका है कि जल निकाय चाहे वे समुद्र हों, नदियाँ हों, झीलें हों, जलाशय हों, मुहाने (estuaries) हों या आर्द्रभूमियाँ केवल हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का भौतिक मिश्रण नहीं हैं, बल्कि वे एक जीवंत और गतिशील "आनुवंशिक सूप" (genetic soup) हैं। इस सूप में उस जल निकाय से होकर गुजरने वाले या उसमें रहने वाले प्रत्येक जीव की जैविक जानकारी छिपी होती है। जिस प्रकार एक फॉरेंसिक वैज्ञानिक अपराध स्थल पर मिले बाल, रक्त या उँगलियों के निशानों से पता लगा सकता है कि वहाँ कौन उपस्थित था, उसी प्रकार मत्स्य वैज्ञानिक और जलीय पारिस्थितिकीविद नदी, झील या जलाशय से लिए गए पानी के नमूने से यह पता कर सकते हैं कि उस प्रणाली में हाल ही में कौन-कौन सी प्रजातियाँ मौजूद थीं। eDNA में मछलियों को पकड़ने, घायल करने या मारने की आवश्यकता नहीं होती। यह तकनीक समुद्री, नदियों, झीलों-जलाशयों जैसे संवेदनशील जल निकायों में जैव विविधता निगरानी, संरक्षण और विज्ञान-आधारित मत्स्य प्रबंधन हेतु प्रभावी उपकरण हो सकती है।

eDNA और पारंपरिक मत्स्य सर्वेक्षण: दृष्टिकोणों का तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य

मत्स्य संसाधन आकलन के लिए eDNA और पारंपरिक सर्वेक्षण विधियाँ अक्सर "विकल्प"के रूप में देखी जाती हैं, जबकि वास्तव में ये एक-दूसरे की पूरक हैं। तलिका 1 में विविध जल निकायों में पारंपरिक विधियाँ और पर्यावरणीय डीएनए तकनीक का तुलनात्मक विवरण दर्शाया गया है ।

तलिका 1: पारंपरिक विधियाँ और पर्यावरणीय डीएनए तकनीक मे तुलनात्मक भिन्नता

विशेषता	पारंपरिक विधियाँ (ट्रॉलिंग, नेटिंग, इलेक्ट्रोफिशिंग आदि)	पर्यावरणीय डीएनए (eDNA)
मूल सिद्धांत	मछलियों को पकड़कर या प्रत्यक्ष देखकर डेटा एकत्र करना	पानी में उपस्थित आनुवंशिक सामग्री (DNA) का विश्लेषण
मछलियों पर तनाव (Fish stress)	उच्च स्तर का शारीरिक और व्यवहारिक तनाव; पकड़, और हैंडलिंग	नगण्य या शून्य तनाव; मछलियों से प्रत्यक्ष संपर्क नहीं
आक्रामकता (Invasiveness)	आक्रामक; चोट, मृत्यु और बायकैच की संभावना	पूर्णतः गैर-आक्रामक
आवास पर प्रभाव	तलछट उथल-पुथल, प्रजनन स्थल और नर्सरी क्षेत्रों को क्षति संभव	आवास पर लगभग कोई प्रभाव नहीं
लागत और श्रम	उच्च लागत; जहाज, ईंधन, भारी उपकरण और प्रशिक्षित दल आवश्यक	अपेक्षाकृत कम लागत; सीमित उपकरण और कम जनशक्ति
प्रजाति पहचान	टैक्सोनॉमिक विशेषज्ञता पर निर्भर; समान प्रजातियों में त्रुटि संभव	आनुवंशिक डेटाबेस पर आधारित; उच्च सटीकता (डेटाबेस उपलब्धता पर निर्भर)
दुर्लभ/छिपी प्रजातियाँ	अक्सर छूट जाती हैं	cryptic, दुर्लभ व कम घनत्व वाली प्रजातियों का पता संभव
डेटा प्राप्ति का समय	सप्ताह से महीनों तक	तेज प्रयोगशाला प्रक्रिया; त्वरित निगरानी संभव
स्थानिक सीमा	केवल जाल-योग्य क्षेत्रों तक सीमित	उथले, चट्टानी, घने वनस्पति और संरक्षित क्षेत्र भी शामिल
मात्रात्मक जानकारी	लंबाई, वजन, आयु, जैसी विस्तृत जानकारी	मुख्यतः उपस्थिति–अनुपस्थिति और सापेक्ष संकेत
प्रबंधन में भूमिका	स्टॉक आकलन और शोषण नियंत्रण	जैव विविधता निगरानी, सटीक आंकलन और चेतावनी

eDNA कैसे काम करता है?

पर्यावरणीय डीएनए की वास्तविक शक्ति उसके सरल लेकिन अत्यधिक सटीक कार्यप्रवाह में निहित है। यह प्रक्रिया जल निकाय के प्रकार चाहे वह समुद्र हो, नदी, झील या जलाशय के अनुसार कुछ संशोधनों के साथ, मूल रूप से समान रहती है।

१. पानी का नमूना लेना

eDNA अध्ययन की पहली और सबसे महत्वपूर्ण कड़ी जल नमूना संग्रह है। आमतौर पर १ से ५ लीटर पानी को सतह, मध्य-स्तर या तल के पास से एकत्र किया जाता है। नदियों और जलाशयों में यह चयन विशेष रूप से प्रवाह, गहराई और जल मिश्रण पर निर्भर करता है, जबकि झीलों और मुहानों में स्तरीकरण एक निर्णायक भूमिका निभाता है। इसमें अत्यंत सावधानी की जरूरत होती है, क्योंकि बाहरी संदूषण परिणामों को प्रभावित कर सकता है।

२. निस्पंदन और डीएनए निष्कर्षण

एकत्र किए गए पानी को विशेष फिल्टरों से गुजारा जाता है, जिनमें पानी में मौजूद कोशिकाएँ और डीएनए अंश फँस जाते हैं। इसके बाद प्रयोगशाला में इन फिल्टरों से डीएनए को रासायनिक विधियों द्वारा निकाला जाता है। यहाँ यह समझना महत्वपूर्ण है कि नदियों और जलाशयों में तलछट की मात्रा अधिक होने के कारण डीएनए निष्कर्षण की जटिलता बढ़ जाती है, यह एक चुनौती जिसे उष्णकटिबंधीय प्रणालियों में विशेष रूप से ध्यान में रखना पड़ता है।

३. पीसीआर प्रवर्धन

निकाले गए डीएनए को *Polymerase Chain Reaction (PCR)* के माध्यम से बढ़ाया जाता है। यदि अध्ययन किसी विशिष्ट प्रजाति (जैसे कोई आक्रामक या संकटग्रस्त मछली) पर केंद्रित है, तो species-specific primers का उपयोग किया जाता है। वहीं, जैव विविधता के व्यापक आकलन हेतु eDNA metabarcoding अपनाया जाता है, जिसमें एक ही नमूने से दर्जनों या सैकड़ों प्रजातियों की पहचान संभव होती है।

४. सीक्वेंसिंग और बायोइन्फॉर्मेटिक्स

PCR के बाद डीएनए का अनुक्रमण (sequencing) किया जाता है और प्राप्त अनुक्रमों की तुलना वैश्विक आनुवंशिक डेटाबेस से की जाती है। इसी चरण में यह निर्धारित होता है कि कौन-सी प्रजातियाँ उस जल निकाय में उपस्थित थीं।

५. पारिस्थितिक विश्लेषण

EDNA केवल "कौन-सी प्रजाति मौजूद है" तक सीमित नहीं है। समय-श्रृंखला नमूनों के माध्यम से यह तकनीक प्रजातियों की मौसमी उपस्थिति, प्रवासन पैटर्न, आक्रामक प्रजातियों के प्रारंभिक आगमन और पारिस्थितिक स्वास्थ्य में हो रहे परिवर्तनों को भी उजागर कर सकती है।

पर्यावरणीय डीएनए (eDNA) तकनीक के प्रकार

पर्यावरणीय डीएनए (eDNA) आधारित निगरानी को एकल तकनीक के रूप में नहीं, बल्कि दो स्पष्ट और पूरक वैज्ञानिक दृष्टिकोणों के रूप में समझा जाना चाहिए। इन दृष्टिकोणों का मुख्य अंतर प्रयोग में लिए जाने वाले प्राइमर (primers) के प्रकार और उनकी विशिष्टता से जुड़ा है। पहला दृष्टिकोण किसी विशिष्ट प्रजाति की पहचान पर केंद्रित होता है, जबकि दूसरा सम्पूर्ण मत्स्य समुदाय की संरचना और उसकी गतिशीलता को समझने में सहायक होता है। इस अवधारणा को समझने के लिए चित्र १ सहायक है। जिस प्रकार किसी सुपरमार्केट में प्रत्येक उत्पाद पर लगा विशिष्ट बारकोड स्कैनर को यह जानकारी देता है कि वह उत्पाद चावल है, दाल है या साबुन, उसी प्रकार प्रत्येक प्रजाति के डीएनए में कुछ विशिष्ट आनुवंशिक क्षेत्र होते हैं जो एक जैविक 'बारकोड' के रूप में कार्य करते हैं। eDNA तकनीक इन्हीं डीएनए बारकोड्स को लक्षित प्राइमरों की सहायता से पहचानती है और यह निर्धारित करती है कि किसी जल निकाय में कौन-सी प्रजातियाँ उपस्थित हैं।

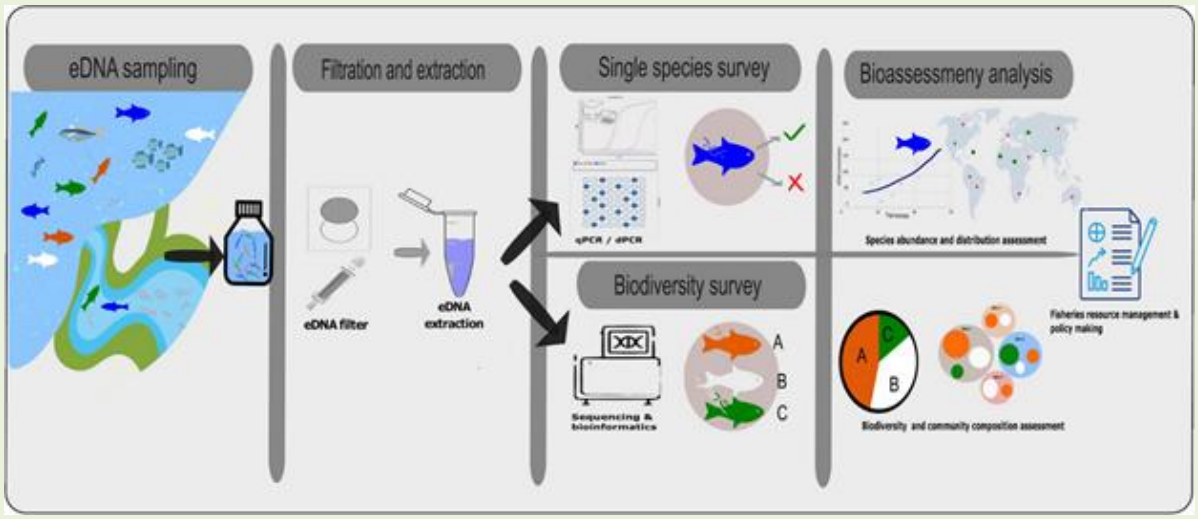

चित्र १: पर्यावरणीय डीएनए (eDNA) विश्लेषण के प्रमुख चरण (*स्रोत: Bhendarkar & Rodríguez-Ezpeleta, २०२४)*

१) प्रजाति-विशिष्ट पहचान

जब शोध का उद्देश्य किसी विशिष्ट मछली को खोजना होता है जैसे कि कोई दुर्लभ लुप्तप्राय प्रजाति या कोई हानिकारक आक्रामक प्रजाति तो वैज्ञानिक इस विधि का उपयोग करते हैं। प्रजाति-विशिष्ट पहचान वह दृष्टिकोण है जिसमें किसी एक विशिष्ट मछली प्रजाति के डीएनए को लक्षित किया जाता है। इसमें प्रजाति-विशेष प्राइमर और प्रोब का उपयोग कर यह पता लगाया जाता है कि वह प्रजाति किसी जल निकाय में मौजूद है या नहीं। यह विधि अत्यधिक संवेदनशील होती है और बहुत कम जनसंख्या घनत्व पर भी प्रजाति की उपस्थिति का संकेत दे सकती है। भारतीय मत्स्य संसाधन प्रबंधन के संदर्भ में यह दृष्टिकोण विशेष उपयोगी है क्योंकि यहाँ अनेक प्रजातियाँ या तो संकटग्रस्त, आक्रामक, या उच्च आर्थिक महत्व वाली हैं। पारंपरिक सर्वेक्षणों में ऐसी प्रजातियाँ अक्सर छूट जाती हैं, विशेषकर तब जब वे दुर्लभ हों, मौसमी रूप से अनुपस्थित हों या गहरे/संरक्षित आवासों में निवास करती हों। भेंडारकर इत्यादि (२०२५) ने 'सी लैम्प्रे' और 'शड्स' जैसी प्रवासी मछलियों को ट्रैक करने के लिए इस विधि का उपयोग किया।

२) **बहु-प्रजाति पहचान**

जब शोध का उद्देश्य पूरे पारिस्थितिक तंत्र की स्वास्थ्य जांच करना या जैव विविधता का नक्शा बनाना होता है, तो मेटाबारकोडिंग का उपयोग किया जाता है। बहु-प्रजाति पहचान (metabarcoding) एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसमें एक ही जल नमूने से पूरे मत्स्य समुदाय की संरचना का आकलन किया जाता है। इसमें सार्वभौमिक या अर्ध-सार्वभौमिक प्राइमर का उपयोग कर अनेक प्रजातियों के डीएनए को एक साथ प्रवर्धित किया जाता है, जिसके बाद उच्च-थ्रूपुट अनुक्रमण और बायोइन्फॉर्मेटिक्स विश्लेषण द्वारा प्रजाति पहचान की जाती है। यह दृष्टिकोण भारतीय मत्स्य संसाधन प्रबंधन के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है, क्योंकि अधिकांश जल निकाय बहु-प्रजातीय हैं और पारिस्थितिक संतुलन किसी एक प्रजाति पर नहीं, बल्कि पूरे समुदाय की संरचना पर निर्भर करता है। पारंपरिक पकड़-आधारित सर्वेक्षण अक्सर समुदाय की अधूरी तस्वीर प्रस्तुत करते हैं, विशेषकर cryptic, छोटी या गैर-व्यावसायिक प्रजातियों के संदर्भ में। यह एक सुपरमार्केट स्कैनर की तरह काम करता है जो टोकरी (पानी के नमूने) में मौजूद हर सामान (मछली) के बारकोड को स्कैन करके पूरी लिस्ट दे देता है। उदाहरणार्थ भेंडारकर और अन्य (२०२५) ने 'एज़्टि फिश इंडेक्स' (AZTI Fish Index) के लिए इस विधि का उपयोग किया। उन्होंने मुहानों (Estuaries) में रहने वाली मछलियों के पूरे समुदाय का आकलन किया ताकि यह समझा जा सके कि पर्यावरण कितना स्वस्थ है ।

भारतीय मत्स्य संसाधन प्रबंधन: एक अद्वितीय चुनौती

भारत में मत्स्य संसाधन प्रबंधन का उद्देश्य केवल उत्पादन बढ़ाना नहीं, बल्कि संसाधनों का दीर्घकालिक संरक्षण, पारिस्थितिक संतुलन और आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करना है। समुद्री, अंतर्देशीय और मुहाना-आधारित मत्स्य संसाधनों पर बढ़ते दोहन, जलवायु परिवर्तन और आक्रामक प्रजातियों के दबाव ने पारंपरिक प्रबंधन ढाँचों को अपर्याप्त बना दिया है। ऐसे में eDNA प्रबंधन-निर्णयों को डेटा-आधारित, तनाव-मुक्त और अनुकूली बना सकता है।

A. **eDNA के रणनीतिक लाभ**

१. जैव विविधता का समग्र आकलन

भारतीय नदियाँ, जलाशय और तटीय प्रणालियाँ प्रजातीय समृद्धि के लिए जानी जाती हैं। पारंपरिक सर्वेक्षण अक्सर इस विविधता को आंशिक रूप से ही दर्ज कर पाते हैं। eDNA एक ही जल नमूने से अनेक मछली, उभयचर और अन्य जलीय प्रजातियों की पहचान कर सकता है, जिससे समुदाय संरचना और जैव विविधता का यथार्थ चित्र प्राप्त होता है।

२. तनाव-मुक्त और नैतिक निगरानी

भारत में अनेक मत्स्य संसाधन पहले से ही तापीय तनाव, प्रदूषण, जल-निकासी और आवास ह्रास जैसी चुनौतियों के दबाव में हैं। पारंपरिक जाल-आधारित सर्वेक्षण इन मछलियों पर अतिरिक्त शारीरिक और व्यवहारिक तनाव डालते हैं, जिससे उनके स्वास्थ्य और प्रजनन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। eDNA एक पूर्णतः तनाव-मुक्त और चीरफाड़हीन विधि के रूप में सामने आता है। यह तकनीक मछलियों की निगरानी के लिए अधिक सुरक्षित

विकल्प प्रदान करती है। यह विशेष रूप से प्रजनन काल और संरक्षित जल निकायों में उपयोगी है, जहां मछलियों को न्यूनतम हस्तक्षेप के साथ अध्ययन किया जा सकता है।

३. विविध और दुर्गम जल निकायों में उपयोगिता

भारत के कई जल निकाय जैसे छोटे ग्रामीण तालाब, वनस्पति-घने जलाशय, पहाड़ी नदियाँ और संरक्षित आर्द्रभूमियाँ पारंपरिक सैम्पलिंग के लिए उपयुक्त नहीं होते। eDNA इन भौतिक सीमाओं को पार करते हुए व्यापक निगरानी को संभव बनाता है।

४. आक्रामक और दुर्लभ प्रजातियों की शीघ्र पहचान

भारतीय जल निकायों में तिलापिया, सकरमाउथ कैटफ़िश और अन्य आक्रामक प्रजातियों का प्रसार एक गंभीर समस्या है। eDNA इन प्रजातियों की प्रारंभिक पहचान में सहायक हो सकता है।

५. लागत-प्रभावी और भौगोलिक स्तर

भारत जैसे विकासशील देश में संसाधन-सीमित परिस्थितियों में eDNA बड़े पैमाने पर, अपेक्षाकृत कम लागत में, राष्ट्रीय या राज्य-स्तरीय कार्यक्रमों के लिए एक व्यावहारिक विकल्प प्रदान करता है।

B. eDNA की सीमाएँ और सावधानियाँ

१. भारतीय प्रजातियों के लिए अधूरे आनुवंशिक डेटाबेस

भारत की कई देशी और क्षेत्रीय मछली प्रजातियों के आनुवंशिक संदर्भ अनुक्रम अभी भी सार्वजनिक डेटाबेस में अनुपलब्ध या अत्यंत सीमित हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव eDNA आधारित पहचान की सटीकता पर पड़ता है, जिससे या तो प्रजाति की गलत पहचान होती है अथवा कुछ प्रजातियाँ विश्लेषण से पूरी तरह छूट जाती हैं। चित्र २ से स्पष्ट है कि यद्यपि COI मार्कर के लिए अनुक्रमों की कुल संख्या अपेक्षाकृत अधिक है, फिर भी बड़ी संख्या में प्रजातियाँ केवल एक या बहुत कम (<१०) अनुक्रमों द्वारा प्रतिनिधित्व करती हैं। 16S, 12S और cytb जैसे मार्करों में यह स्थिति और भी सीमित दिखाई देती है।

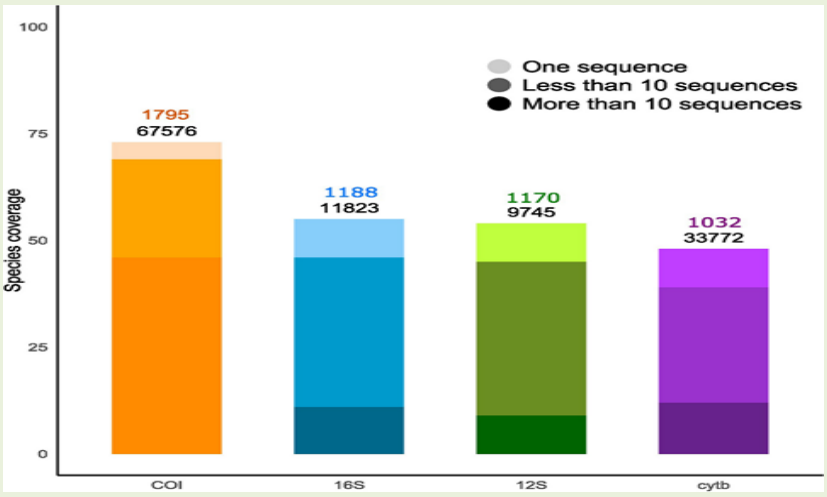

चित्र २. विभिन्न माइटोकॉन्ड्रियल जीन मार्करों (COI, 16S, 12S तथा cytb) के लिए उपलब्ध संदर्भ अनुक्रमों के आधार पर प्रजाति कवरेज (स्रोत: Mukesh Bhendarkar & Naiara Rodriguez-Ezpeleta, २०२४)

२. जलवायु और पर्यावरणीय कारकों का प्रभाव

उच्च तापमान, मानसूनी प्रवाह, तलछट भार और सूक्ष्मजीवी गतिविधि eDNA के क्षय को तेज कर सकते हैं। भारतीय नदियों और जलाशयों में यह प्रभाव विशेष रूप से स्पष्ट होता है, जिससे स्थानिक और कालिक व्याख्या जटिल हो जाती है।

३. मात्रा आधारित प्रबंधन की सीमाएँ

eDNA वर्तमान में मछली की सटीक संख्या, बायोमास या आयु संरचना जैसी जानकारी प्रदान करने में सीमित है जबकि ये मापदंड भारतीय मत्स्य प्रबंधन के लिए अत्यंत आवश्यक हैं।

४. स्थानिक व्याख्या की जटिलता

गंगा, ब्रह्मपुत्र और गोदावरी जैसी बड़ी नदियों में जल प्रवाह eDNA को दूर तक ले जा सकता है। इससे यह निर्धारित करना कठिन हो जाता है कि प्रजाति वास्तव में नमूना स्थल पर मौजूद है या ऊपर की ओर किसी अन्य स्थान पर। नदियों और बड़े जलाशयों में eDNA का बहाव प्रबंधन-इकाई की स्पष्ट सीमाएँ तय करना कठिन बना सकता है, जिससे निर्णयों में अनिश्चितता आ सकती है।

५. संस्थागत और तकनीकी ढाँचा

eDNA को मत्स्य संसाधन प्रबंधन में मुख्यधारा बनाने के लिए सबसे पहले मानकीकृत प्रोटोकॉल तैयार करना जरूरी है, ताकि विभिन्न जल निकायों और परिस्थितियों में डेटा सुसंगत और तुलनीय हो। इसके साथ ही एक राष्ट्रीय आनुवंशिक डेटाबेस का निर्माण आवश्यक है, जिससे मछलियों की पहचान और प्रजातिगत वितरण को अधिक सटीक तरीके से ट्रैक किया जा सके

भारत के लिए अवसर

वर्तमान चुनौतियों के बावजूद, भारत के लिए पर्यावरणीय डीएनए (eDNA) आधारित तकनीकों के अवसर अत्यंत व्यापक हैं। भारत की लंबी तटरेखा, विविध नदियाँ, विशाल जलाशय, झीलें और मुहाने ऐसे जलीय तंत्र हैं, जिनकी प्रभावी निगरानी पारंपरिक तरीकों से कठिन, महंगी और अक्सर अपूर्ण रही है। इस संदर्भ में eDNA भारतीय मत्स्य संसाधन प्रबंधन के लिए एक परिवर्तनकारी उपकरण के रूप में उभरता है।

१) आक्रामक प्रजातियों के लिए प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली

भारत में सकरमाउथ कैटफिश (Suckermouth catfish) जैसी आक्रामक प्रजातियाँ देशी मत्स्य संसाधनों और पारिस्थितिक संतुलन के लिए गंभीर खतरा बन चुकी हैं। पारंपरिक सर्वेक्षणों में इन प्रजातियों की पहचान प्रायः तब होती है, जब वे पहले ही व्यापक रूप से फैल चुकी होती हैं और प्रबंधन विकल्प सीमित रह जाते हैं। यहाँ प्रजाति-विशिष्ट eDNA पहचान (species-specific eDNA detection) एक प्रभावी प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली के रूप में कार्य कर सकती है। eDNA तकनीक अत्यंत कम घनत्व पर भी आक्रामक प्रजातियों की उपस्थिति का संकेत दे सकती है। केवल एक कप पानी के नमूने के विश्लेषण से यह पता लगाया जा सकता है कि किसी नए तालाब, जलाशय या नदी खंड में किसी विदेशी मछली की घुसपैठ हो रही है या नहीं। इस प्रकार, eDNA प्रबंधकों को समय रहते हस्तक्षेप करने और बड़े पैमाने पर पारिस्थितिक क्षति को रोकने का अवसर प्रदान करता है।

२) **लुप्तप्राय एवं दुर्लभ प्रजातियों का संरक्षण**

भारत की जलीय प्रणालियों में गंगा डॉल्फिन, डुगोंग तथा कई दुर्लभ शार्क और रे प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इन प्रजातियों की निगरानी पारंपरिक पकड़-आधारित तरीकों से न केवल कठिन है, बल्कि कई मामलों में जोखिमपूर्ण और नैतिक रूप से चुनौतीपूर्ण भी है। eDNA एक गैर-आक्रामक और सुरक्षित विकल्प प्रदान करता है। eDNA उन प्रजातियों की भी पहचान कर सकता है जो छिपने की प्रवृत्ति वाली होती हैं, बहुत कम संख्या में उपस्थित होती हैं, या पारंपरिक सर्वेक्षणों से बार-बार छूट जाती हैं। इस प्रकार eDNA तथाकथित "अदृश्य" जैव विविधता को दृश्यमान बनाता है और संरक्षण नीतियों के लिए आवश्यक ठोस वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है।

३) **नागरिक विज्ञान: निगरानी में जनता की भागीदारी**

eDNA तकनीक की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी सरलता और सुलभता है। जल नमूना संग्रह के लिए अत्यधिक तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता नहीं होती। इसी कारण भेंडारकर सहित कई शोधकर्ताओं ने eDNA को नागरिक विज्ञान के साथ जोड़ने की संभावना पर विशेष बल दिया है। कुछ मामलों में तो eDNA विश्लेषण के माध्यम से १४० से अधिक मछली प्रजातियों की पहचान की गई, जिनमें कई दुर्लभ और लुप्तप्राय प्रजातियाँ भी शामिल थीं। भारत के लिए इसका महत्व अत्यंत स्पष्ट है। वैज्ञानिक संसाधनों की सीमित उपलब्धता वाले देश में, यदि मछुआरों, छात्रों और स्थानीय समुदायों को बुनियादी प्रशिक्षण देकर जल नमूना संग्रहण में शामिल किया जाए, तो पूरे देश के जल निकायों की व्यापक निगरानी संभव हो सकती है।

नीति और भविष्य की दिशा

पर्यावरणीय डीएनए (eDNA) को पारंपरिक मत्स्य सर्वेक्षण विधियों का प्रतिस्थापन नहीं, बल्कि उनका पूरक उपकरण माना जाना चाहिए। यह तकनीक मछलियों और अन्य जलजीवों की निगरानी में न्यूनतम हस्तक्षेप और उच्च सटीकता प्रदान करती है। भारत जैसे जैव विविधता-समृद्ध और सामाजिक-आर्थिक रूप से जटिल देश में eDNA की भूमिका तभी प्रभावी हो पाएगी जब इसे एक सुविचारित नीति ढाँचे के अंतर्गत चरणबद्ध तरीके से अपनाया जाए। भविष्य की दिशा निम्नलिखित प्रमुख स्तंभों पर आधारित होनी चाहिए:

१) **राष्ट्रीय eDNA एवं बारकोड डेटाबेस का निर्माण**

भारत में eDNA के प्रभावी उपयोग के लिए देशी एवं विदेशी मछली प्रजातियों की एक व्यापक आनुवंशिक बारकोड लाइब्रेरी का निर्माण सबसे पहली और बुनियादी आवश्यकता है। जब तक यह स्पष्ट नहीं होगा कि प्रत्येक प्रजाति का संदर्भ डीएनए कैसा है, तब तक eDNA आधारित पहचान और निगरानी अपनी पूर्ण क्षमता तक नहीं पहुँच सकती। यह कार्य राष्ट्रीय मिशन के रूप में लिया जाना चाहिए, जिसमें भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों के बीच समन्वय स्थापित हो। डेटाबेस का निरंतर अद्यतन न केवल eDNA की सटीकता बढ़ाएगा, बल्कि भारत को उष्णकटिबंधीय मत्स्य अनुसंधान में वैश्विक नेतृत्व की ओर भी ले जा सकता है।

२) **मानकीकरण और अंशांकन**

भेंडारकर (२०२५) द्वारा विकसित एस्टुअरिन फिश इंडेक्स (AFI) से स्पष्ट हुआ है कि पारंपरिक पारिस्थितिक सूचकांकों में eDNA डेटा को सीधे समाहित करने से भ्रामक निष्कर्ष निकल सकते हैं। eDNA की प्रकृति पारंपरिक

पकड़-आधारित डेटा से भिन्न है, इसलिए इसके लिए नए पारिस्थितिक सूचकांक और मूल्यांकन ढाँचे विकसित करना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त, नमूना संग्रह, संरक्षण, डीएनए निष्कर्षण, अनुक्रमण और बायोइन्फॉर्मेटिक्स विश्लेषण के लिए राष्ट्रीय स्तर पर मानकीकृत प्रोटोकॉल विकसित किए जाने चाहिए।

३) क्षमता निर्माण और विज्ञान-नीति संवाद

eDNA को अपनाने में सबसे बड़ी चुनौती तकनीकी नहीं, बल्कि संस्थागत और मनोवैज्ञानिक अर्थात "विश्वास" की कमी है। कई मत्स्य प्रबंधक और नीति-निर्माता डीएनए आधारित निष्कर्षों पर इसलिए संदेह करते हैं क्योंकि, यह आँकड़े प्रत्यक्ष पकड़ या दृश्य अवलोकन पर आधारित नहीं होते। इस चुनौती से निपटने के लिए वैज्ञानिक समुदाय को केवल तकनीक विकसित करने तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि eDNA परिणामों की स्पष्ट व्याख्या, पारंपरिक सर्वेक्षणों के साथ तुलनात्मक अध्ययन, और प्रबंधन-उन्मुख केस स्टडी के माध्यम से विश्वास निर्माण पर भी कार्य करना होगा। इसके साथ-साथ मत्स्य विभाग के अधिकारियों, प्रबंधकों और नीति-निर्माताओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम और क्षमता निर्माण पहल आवश्यक हैं।

४) चरणबद्ध कार्यान्वयन और पायलट परियोजनाएं

भारत में eDNA को सीधे राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने के बजाय, इसे पायलट परियोजनाओं के माध्यम से चरणबद्ध रूप से अपनाया जाना चाहिए। चयनित नदियों, जलाशयों और तटीय क्षेत्रों में पारंपरिक सर्वेक्षणों के साथ eDNA को जोड़कर इसके व्यावहारिक लाभ, सीमाएँ और लागत-प्रभावशीलता का आकलन किया जा सकता है। इससे नीति-निर्माताओं को ठोस साक्ष्य-आधारित निर्णय लेने में सहायता मिलेगी।

५) eDNA को राष्ट्रीय मत्स्य नीति में एकीकृत करना

अंततः, eDNA को केवल एक अनुसंधान उपकरण के रूप में नहीं, बल्कि राष्ट्रीय मत्स्य संसाधन प्रबंधन और संरक्षण नीति के एक अभिन्न अंग के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता ह्रास और आक्रामक प्रजातियों के बढ़ते दबाव के बीच, eDNA एक ऐसा वैज्ञानिक साधन प्रदान करता है जो तेज़, गैर-आक्रामक और भविष्य-उन्मुख प्रबंधन की दिशा में निर्णायक भूमिका निभा सकता है।

निष्कर्ष

पर्यावरणीय डीएनए तकनीक मत्स्य विज्ञान में उसी प्रकार का परिवर्तन ला रही है, जैसा परिवर्तन कभी दूरबीन ने खगोल विज्ञान में किया था। इस तकनीक ने हमें जलीय पारिस्थितिक तंत्रों के उन सूक्ष्म और दूरस्थ आयामों को समझने की क्षमता दी है, जो अब तक पारंपरिक सर्वेक्षण विधियों की पहुँच से बाहर थे। eDNA ने "दृश्य" और "अदृश्य" जैव विविधता के बीच की खाई को पाटते हुए, जल निकायों की एक अधिक समग्र और संवेदनशील तस्वीर प्रस्तुत की है। भारत जैसे उष्णकटिबंधीय, जैवविविधता-समृद्ध और संसाधन-संवेदनशील देश में eDNA को मछुआरों, मत्स्य प्रबंधकों और नीति-निर्माताओं के लिए एक व्यावहारिक, सुलभ और निर्णय-सहायक उपकरण के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। आने वाले दशक में, पानी की एक छोटी-सी बोतल हमें महासागरों, नदियों और झीलों के बारे में वह जानकारी दे सकेगी, जिसे सदियों तक जाल और हुक के माध्यम से भी पूरी तरह समझ पाना संभव नहीं था। यही eDNA की वास्तविक शक्ति और भविष्य की दिशा है।

संदर्भ

भेंडरकर, एम., कैनाल्स, ओ., जुराडो, सी., मेंडिबिल, आई., उरिआर्ते, ए., बोर्जा, ए., एवं रोड्रिगेज-एज़्पेलेटा, एन. (2025). पारिस्थितिक मूल्यांकन में प्रगति: eDNA मेटाबारकोडिंग को ज्वारनदमुखीय (एस्टुअरीन) मत्स्य सूचकांक में एकीकृत करने की दिशा. *इकोलॉजिकल इंडिकेटर्स*, 181,114464 ।

भेंडरकर, एम., क्लेवर, सी., मेंडिबिल, आई., फ्राइजा-फर्नांडीज़, एन., नाचोन, डी.जे., डेविसन, पी.आई., बाशिच, टी., ओ'लेरी, सी., रोश, डब्ल्यू.के., अज़्पिरोज़, आई., अकोलास, एम., लेकुओना, ए., लेकुओना, ए., लेकुओना, ए., रोड्रिगेज-एज़्पेलेटा, एन. (2025). उत्तर-पूर्व अटलांटिक क्षेत्र में प्रवासी (डायड्रोमस) मत्स्य प्रजातियों की पहचान हेतु eDNA सर्वेक्षण के अनुप्रयोग से प्राप्त सीख. bioRxiv (कोल्ड स्प्रिंग हार्बर प्रयोगशाला) ।

भेंडरकर, एम., एवं रोड्रिगेज-एज़्पेलेटा, एन. (2024). उष्णकटिबंधीय मत्स्य प्रबंधन में पर्यावरणीय डीएनए के नए आयाम: अनन्वेषित क्षेत्रों की पड़ताल. *एनवायरनमेंटल मॉनिटरिंग एंड असेसमेंट*, 196, 617 ।

भेंडरकर, एम. (2025). पर्यावरणीय डीएनए भारतीय मत्स्य प्रबंधन को कैसे रूपांतरित कर सकता है? 26 दिसंबर 2025 को अभिगमित ।

सुफलाम्
(अंक ७, २०२५)
जलवायु परिवर्तन, अजैविक तनाव प्रबंधन एवं समृद्ध खेती
आईएसबीएन: 978-81-985897-9-8

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agrisearch with a human touch

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
ICAR

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान
बारामती, पुणे, महाराष्ट्र ४१३ ११५
फोन: (०२११२) २५८०००; वेब: niam.res.in